Chapter-7

अध्याय : ७ :

अन्य ललित निबंधकारों के ललित निबन्ध

:: प्रस्तावना ::

इस अध्याय में श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', श्री रामवृक्ष बेनीपुरी, डा० गुलाबराय, वियोगीहरि, शांतिप्रिय द्विवेदी, शिवप्रसाद सिंह, आचार्य ललिताप्रसाद शुक्ल, इन्द्रनाथ मदान, डा० जगदीशचंद्र माथुर, भगवतशरण उपाध्याय विवेकीराय, और डा० धर्मवीर भारती आदि निबंधकारों को प्रस्तुत किया गया है। इनके द्वारा प्रस्तुत निबंध बहुत महत्वपूर्ण हैं - जो ललित निबंध विधा के उज्ज्वल भविष्य के द्योतक हैं। उनकी यह निबंध विधा भाव संपत्ति, विचार गरिमा, ज्ञान-विज्ञान के सूत्रों पर गूंथे हुए हास्य- व्यंग्य के पुट से युक्त भाषा के सौंदर्य से अभिमंडित हैं, और कुछ इठलाहट मय प्रवाह से रचना के लालित्य को उभारती है। निबंधकार जितना अधिक बहुश्रुत, बहुपठित, शैलीकार तथा लोक चेतना से संपृक्त होता है वह उतनी ही श्रेष्ठ रचना देता है। इनके निबंधों में हमें निबंध कला का यथार्थ अर्थात् वास्तविक विकास, निखार तथा उत्कर्ष मिलता है। इनके निबंधों में प्रस्तुत गद्य लालित्य और श्रेष्ठ शैली सौष्ठव से निबंधकार शैलीकार के रूप में प्रकट होता है। निबंधकारों ने अपने निबंधों में उदात्त शैली तत्वों के माध्यम से इस विधा को उत्तम स्वरूप दिया है। अब हम क्रमशः उनके निबंधों का विवेचन प्रस्तुत करेंगे।

विषय-वस्तु :(कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर)

श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने विविध प्रकार के निबंध प्रस्तुत किए हैं। जैसे सांस्कृतिक, धार्मिक, साहित्यिक, सामाजिक, वैयक्तिक, संस्मरणात्मक आदि। अपने निबंधों में वे विचारों की अभिव्यक्ति प्रायः 'मैं' के माध्यम से करते हैं। अब हम क्रमशः उनके निबंधों की विषय-वस्तु प्रस्तुत कर रहे हैं।

सांस्कृतिक :

इस प्रकार ‍ के अन्तर्गत संस्कृति पर निबंधकार ने अपने विचार प्रस्तुत किए हैं । प्राचीन संस्कृति पर प्रकाश डालते हुए कहीं- कहीं उन्होंने उसकी वर्तमान से तुलना भी की है ।

`जलती चिता की उस गोद में`[१] शीर्षक निबंधानुसार प्राचीन काल में मनुष्य जंगली अवस्था में था जबकि आज मनुष्य ने अनेक गांव बसा लिये हैं। शहर बना लिये हैं । आरंभिक अवस्था में उसने अपनी नंगी देह को पत्तों और छालों से ढककर और फूलों एवं बेल की लताओं से सजाकर इस सभ्यता की नींव रखी थी । आज भी उसके भीतर ही भीतर वह वृत्ति शेष है और वह इन दीवारों को फूल-पत्तियों, बाहरी आचार-विचारों से सजाने लगता है । यह सजावट उसकी आंखों में प्यार की, स्नेह की, ममता की एक रेखा खींचती है और यही रेखा आगे बढकर पूजा की भावना में बदल जाती है । उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य ईरान में मातृत्व और समानता का संस्थापक इस्लाम ही राज्य धर्म था । समाज में स्त्रियों की दशा गुलामों से भी बदतर थी । शिक्षा पर कुछ ऊंचे खानदानों का ही अधिकार था । सारे समाज पर जड़ता छाई हुई थी, और क्रूर जड़ता को ही धर्म कहा जाता था । जबकि आज भी धार्मिक स्थानों पर स्वार्थियों का कब्जा देखने को मिलता है । यहां हम शैतान को पा सकते हैं, खुदा को नहीं । औरतें सिर्फ भोग-विलास की चीजें मानी जाती हैं जिसका एक उदाहरण देकर यहां पर निबंधकार ने स्त्री या एक अबला को पवित्र बताया है । `मानवीय पशुता की उस बाढ़ में`[२] शीर्षक निबंधानुसार निबंधकार ने नारी में भारतमाता का दर्शन हमें कराया है । सरदार बहादुर ऊधम सिंह अकीला के ससुर का मित्र है जिसकी दानत अकीला पर खराब होती है और उसे प्राप्त करने के लिए वह अकीला के सास, ससुर, पति, देवर आदि को खत्म कर देता है । यह घटना है देश की आजादी और देश का बंटवारा, दोनों को हाथ में लिये १५ अगस्त १९४७ की, स्वतंत्रता समारोह के

साथ ही साथ खून -खराबा आरंभ हुआ उस वक्त सरदार ने बेचैन भाव से अपने दोस्त से (अकीला के ससुर) बात कही कि अभी अभी जो शरणार्थी उधर से आये हैं, वे कहते हैं कि वहां नंगी औरतों का जुलूस निकाला गया है और यहां भी उसकी तैयारी है । इस समय दोनों दोस्तों में तय हुआ कि सरदार साहब अपने आदमियों की देखरेख में सबको सामान के साथ नदी पार कराके एक छोटे स्टेशन से गाडी में चढा देंगे । जहां पानी के बीच में ही पहरेदारों ने उनके (खान बहादुर) के खानदान को खत्म कर दिया, वहां रह गईं अकेली अकीला जो हत्यारे की वासना का खिलौना बनकर जलते हु हवनकुण्ड में कूद पड़ी । एक कुंवा -सा गढ्ढा-लकडी के कुन्दों से भरा हुआ । दहकती आग से चमचमाता और भयानक । जिसमें भारतमाता जीते जी जल रही थी और उसके पुत्र भारतमाता की जय बोल रहे थे ।

'मुखिया सुचेत'[3] शीर्षक निबंध में राजपूत जाति के मनुष्य का चरित्र चित्रित करते हुए राजपूतों की अपनी विशेष आनबान का उल्लेख किया है । मुखिया सुचेत एक अच्छा राजपूत है जो स्त्रियों का मान करता है। इसका उदाहरण देकर निबंधकार ने वर्णन किया है ।'सीता और मीरा'[4] शीर्षक निबंधानुसार भारतीय इतिहास में नारी चरित्र के दो महान पात्र हैं- सीता और मीरा। सीता सामाजिक मर्यादा का प्रतीक है और मीरा मर्यादाभंग का । राम के बिना सीता के लिए सबकुछ निस्सार था । पर राम ने इस प्रेम के बदले सीता को क्या दिया ? क्या इसका यह अर्थ है कि उसने राम के इन कामों को पसंद किया, फिर भी उसे दण्ड दिया गया ? पर साथ ही सीता ने समझा कि यह दण्ड राम के क्रोध का, उसकी क्षुद्रता का फल नहीं है। उस दण्ड को उसने राम के कार्य में अपना सहयोग मानकर सहा । और राम के प्रति अपनी निष्ठा को अखण्ड रखा । जाने कब से चला आ रहा दो संस्कृतियों का संघर्ष तभी राम के द्वारा समाप्त हुआ था । और नए समाज

की स्थापना हुई । यहां पर एडवर्ड ने विण्डसर बनकर इंग्लैंड को बचा लिया, एकदम उसी तरह जैसे राम ने सीता का त्याग करके भारत को बचा लिया था । मीरा के चरित्र को देखें तो मीरा ने धार्मिक वातावरण में अपने बचपन की सांस ली। मां बचपन में मर गई । पितामह के सम्पर्क में उनका मन कृष्णाप्रेम में कुछ इस तरह रंग गया कि उसमें और किसी के लिए स्थान ही न रहा । मीरा बंधनहीन, मर्यादाहीन, स्वच्छन्द साध्वी है । जबकि राजा विक्रमादित्य आदर्श और मर्यादा का पुजारी है । दोनों में संघर्ष स्वाभाविक था और वह हुआ । मीरा समाज की मर्यादा के प्रति अथ से इति तक विद्रोही है । पवित्रता ही उसके सामने रही। जहां पोषण का शोषण और शोषण का पोषण होता है वह व्यक्ति हो या समाज फल फूल नहीं सकता । `बिड़ला मंदिर देखने चलोगे`? शीर्षक निबंधानुसार दर्शन है आंतरिक एकाग्रता और देखना है बाहरी एकाग्रता । पहली विकास का पथ चिन्ह है और दूसरी विलास का ।

धार्मिक :

श्री `प्रभाकर` जी ने निबंधों में धर्म के विषय पर भी अपने विचार प्रस्तुत किए हैं ।

`मेरे पिता जी`[5] शीर्षक निबंधानुसार ईश्वर के प्रति मनुष्य की श्रद्धा चित्रित की गई है । भगवान और भक्त दोनों का परस्पर सम्बंध होता है इसीलिये ईश्वर मनुष्य की कठिनाइयां भी दूर करता है अगर मनुष्य कुछ मानवता का कार्य करे तो । अपने पास कुछ न होने पर भी सब कुछ है ऐसा मानकर जो दूसरों को या गरीबों को कुछ न कुछ मदद करता है यह मानकर कि ठाकुर जी वक्त आने पर उसे दे देगा, तब खुद भगवान को भी मनुष्य की मदद करनी पड़ती है । सब काम ठाकुर जी की इच्छा से हो रहा है, और ~~इसमें + हैवल अवत भी~~ होगा । आया भी उनका गया भी उनका, दुःख भी उनका सुख भी उनका ही है । मनुष्य अपने को भी प्रभु -

समर्पित कर देता है। यही मनुष्य मनुष्य कहलाता है। 'यह क्या पढ़ रहे हैं आप'[६] शीर्षक निबंधानुसार एक बार मैं गांधी जी के निकट बैठा था और बातचीत प्रार्थना पर चल रही थी। हम सरल भाव से प्रार्थना करें तो परिस्थितियों में बिना किसी प्रयत्न के ऐसा परिवर्तन हो जाता है कि वे समस्याएं आप ही आप सुलझ जाती हैं। गांधी जी के मतानुसार अपनी भाषा में मैं इसे ईश्वर की कृपा मानता हूं। पर मनोवैज्ञानिक रूप में भी इस पर बहुत कुछ कहा जा सकता है। नरेन्द्रनाथ रामकृष्ण परमहंस के निकट गये तो नास्तिक थे पर लौटे तो आस्तिक होकर।

प्राकृतिक :

'शरद पूर्णिमा की खिलखिलाती रात में'[७] शीर्षक निबंधानुसार प्रकृति का वर्णन किया गया है। निबंधकार कहते हैं कि पूर्णिमा की रात मुझे उल्लास और मस्ती से भर देती है। मध्यभारत की आनन्द पूर्ण यात्रा से लौटता, निर्बाध दौड़ी चली आ रही देहरा एक्सप्रेस पर सवार, राजस्थानी इतिहास के रोमांचकारी पृष्ठों और चांदनी की अठखेलियों में आंख-मिचौनी सी खेलता मैं अपनी खिड़की पर बैठा हूं। ये जड़ खण्डहर निर्जीव निरे पत्थर। खण्डहर में भी हरेक का एक जीवित व्यक्तित्व है। बोलता, जागता, प्राणों की धड़कनों से स्पन्दित होता, पुकारता और ललकारता व्यक्तित्व। हमारे कहानीकारों को प्लाट नहीं मिलते, लेखक को विषय नहीं सूझते और भावों की तितलियां कवियों की पकड़ से उपर उड़ा करती हैं ट्रेन के बाहर का वातावरण प्रस्तुत है। बाहर चांदनी बरस रही है, जिसमें जीवन है, आनन्द है, रस है, एकाग्रता है। पहाड़ियां दूर चली गयी है और जंगलों का स्थान खेतों ने ले लिया है। खेतों में हरियाली है, जीवन का सौन्दर्य है। चांदनी में सौन्दर्य है जो आंखों को पलक झपकने से रोकता है तो चिंतन में स्मृतियां हैं, जो विचारों के वाहन पर चढ़ी चली आ रही है। मनुष्य का आकर्षण मनुष्य और जीवन की भिन्न-भिन्न दिशाओं में आज भी है। पर वह अस्वस्थ हो गया है और युग के प्रवाह में स्नान कर उसे स्वस्थ और स्वच्छ होना है।

साहित्यिक :

मिश्र जी के साहित्यिक विषयों पर भी निबंध लिखे हैं - `ये दीप ये शंख`[8] शीर्षक निबंधानुसार साहित्य को जीवन का अंग कहा है । शौक का व्यापार नहीं । साहित्य जीवन का धर्म था- एक नये शब्द में वह जीवन का संविधान था । वे कहते हैं आकाश की कल्पना में न उलझकर जीवन में ही सत्य सौन्दर्य की खोज मेरी आत्मा बन बैठी । इसी आत्मा की आरती के ये हैं कुछ दीप, ये हैं कुछ शंख, दीप तो जलता है अन्धेरे में कि हम देख सकें और शंख जो बजता है आरती पूजा के पहले कि हम सुन सके । दीप जो प्रकाश फैलाते हैं, शंख जो जागरण का सन्देश देते हैं । संक्षेपत: प्रकाश चांदनी, रोशनी, लाइट, बल्व से हो या लैम्प-दीप से सदा राह दिखाता है । पर ये तो जीवन के द्वीप हैं इनके प्रकाश में हम कौन सी राह देखें? ये हुई साहित्य की बात इसके बाद पत्रकला पर कुछ विचार प्रदर्शित किया गया है । `गरम खत, ठंडा जवाब`[9] शीर्षक निबंधानुसार गांधी जी ठण्डे खत लिखने की कला के आचार्य थे । यहां पर गांधी जी के पत्र का थोड़ा सा भाग दिया गया है, १९३१ में वे लंदन की गोलमेजी कान्फ्रेन्स में शरीक हुए । उस समय अल्पसंख्यक समिति की बैठक में प्रधानमंत्री रैम्जे मैकडोनल्ड ने जो भाषण दिया वह धमकियों से भरा हुआ था । गांधी जी उन्हें सुनकर भिन्ना उठे । जब वे पूरी तरह से शांत हो लिये तो उन्होंने एक पत्र लिखकर अपना विरोध प्रकट किया । इससे हम समझ सकते हैं कि जवाब वाणी का हो या कलम का वह जितना ठंडा होगा उतना ही प्रभावशाली होगा । `जब उन्होंने तालियां बजा दीं`[10] शीर्षक निबंधानुसार ठीक वैसे ही सभा में कोई आदमी सिर्फ भाषण से नहीं जमता, जमने की भी एक कला है, मतलब यह होगा कि सभा में वक्ता का भाषण बहुत ही महत्वपूर्ण है, उसे भाषण इस ढंग से करना चाहिए कि सब लोग आकर्षित हो, लोगों में प्रभाव पाइनेवाला हो- श्रोतागण सुनते ही तालियां बजाने लगे । `रहो खाट पर सोय` शीर्षक निबंधानुसार संत तुलसीदास का ज्ञानामृत-`तुलसी भरोसे राम के रहो खाट पर सोय` जीव विज्ञान कहता है कि झगड़े झमेले में मत पड़ो और आराम से खाट पर

पढ़कर सोओ । तुलसीदास जी के इस हिंदी वचन पर उर्दू के एक ज्ञानी ने अपना प्रवचन किया है । मुहुर्त देखकर साफ-सुथरी मजबूत नाव में बैठकर अच्छे मौसम में मल्लाह की मदद से पार उतर जाना मामूली बात है और यह कोई भी कर सकता है । तुलसी के उक्त मत का अर्थ यानी खाट न सही, नाव सही, तुम खुर्राटों का मजा लो, डोलती हिचकोलती नाव अपने आप किनारे लगेगी ।

'पाप के चार हथियार'[११] शीर्षक निबंधानुसार संसार में पाप है, जीवन में दोष, व्यवस्था में न्याय है व्यवहार में अत्याचार । और इस तरह समाज पीड़ित और पीड़क वर्ग में बंट गया है । सुधारक आते हैं, जीवन की इन विडम्बनाओं पर घनघोर चोट करते हैं। विडम्बनाएं टूटती बिखरती नजर आती हैं । पर हम देखते हैं सुधारक चले जाते हैं और विडम्बनाएं अपना काम करती है । 'छोटी कैंची की एक ही लप लपी में'[१२] शीर्षक निबंधानुसार प्रश्न को जीवन की एक कसौटी कहा गया है । प्रश्नों की भी श्रेणी होती है, कि सतरह के प्रश्न मन में उठते हैं, रात में तारों को देखकर कवि के मन में भी, वैज्ञानिक के मन में भी और भक्त के मन में भी प्रश्न उठते हैं । पर तीनों के प्रश्न अपने ज्ञान के स्तर पर अलग अलग हैं । आज का प्रश्न भी जीवन का एक स्वाभाविक प्रश्न है । वह यह कि जब सिर पर हजारों काले बालों का खड़ा रहना बुरा नहीं लगता, तो उस बेचारे एक सफेद बाल का ही खड़ा रहना तुम्हें क्यों अखरा ? इस प्रश्न का उत्तर अतीत में एक कवि दे गये हैं वे थे कवि केशवदास । बड़े रसिया थे पर बेचारों के बाल सफेद हो गये तो रसभंग होने लगा । एक दिन दुखी होकर अपनी ही भाषा में वे बोले- देह बूढ़ी हो चली है, पर मन अभी तरुण है। तरुणाई-रंगरेलियों का त्यौहार है तो कालाकेश जीवन में चढ़ाव का चिन्ह है और सफेद बाल ढलाव का । चढ़ाव में चाप है, ढलान में शांति। इस तरह काला एकांगिता का चिन्ह है और सफेद सर्वांगिणता का । 'धूप बत्ती जली'

शीर्षक निबंधानुसार मनुष्य को अपने जीवन में किसी से कुछ लेना हो तो धूपबत्ती की तरह झुकना अवश्य है। यह झुकना देह का नहीं पर भाव का है। नम्रता से दाता के मन में प्रवेश पाना सुगम है। 'पांच सौ छह सौ क्या?' शीर्षक निबंधानुसार विचारों में, बातों में और व्यवहार में सुनिश्चित होना जीवन की ऊंचाई का मानदण्ड है। अमेरिका और भारत के विद्वानों में यही अंतर है कि वहां के विद्वान अपेक्षाकृत अधिक सुनिश्चित होते हैं।

<u>सामाजिक :</u>

सामाजिक प्रकार के निबंधों में निबंधकार ने कहीं पर देश की सामाजिक स्थिति चित्रित की है तो कहीं मनुष्य समाज का चित्रण किया है। मनुष्य की नियत कैसी होनी चाहिए यह भी बताया गया है।

'अजी क्या रखा है इन बातों में'[१३] शीर्षक निबंधानुसार अगर किसी आदमी की आंख कमजोर हो तो उसे साफ नहीं दीखता पर चश्मा लगाने से उसकी आंखों की ज्योत जाग जाती है। ठीक वैसे ही स्वतंत्र भारत में जो कुछ हुआ या हो रहा है उसे हम समझ नहीं पाते। हमारी आंखें तरक्की देखने की आदी हो गई है पर स्वतंत्र भारत कर रहा है उन्नति। यहां पर तरक्की है भौतिकसुख-समृद्धि, बाहरी साधनों की वृद्धि जब कि उन्नति है मानसिक समृद्धि। किसी ऊंचे उद्देश्य के साथ जीवन की आंतरिक प्रवृत्तियों का जुड़ जाना। यहां पर निबंधकार ने उदाहरण भी दिए हैं। 'पहाड़ की इन चोटियों से नीचे'[१४] शीर्षक निबंधानुसार गरीबों में अपमान के पैनेपन की परख खूब होती है, पर परिस्थितियां उसे इस परख को पीना सीखा देती है। बुधारू हमेशा की तरह आज भी मशीन की तरह काम करता है। खुराक और दवा न मिलने के कारण बुधारू की स्त्री मर गई और कुछ दिन बाद बच्चे भी चल बसे। अब उसके जीवन में अंधेरा ही अंधेरा रह गया है, उसके दिल की कसक, मुंह पर पड़ी झाइयों और निशानों से साफ झलकती है। ठाकुर लोग इन

गरीबों कोपेटभर खाना भी न देते थे और उन पर अत्याचार गुजारते थे। इस इस निबंध से जमीनदारों, शासकों की आपखुदी, शोषणवृत्ति हमारे समक्ष आती है। `रेल के पहियों की घड़घड़ाहट में`[१५] शीर्षक निबंधानुसार मनुष्य सबसे बुद्धिमान और सामाजिक प्राणी है, उसका पशुप्रेम भी प्रबल होता है। वह प्राणियों को भी प्यार करना जानता है। यहां पर मोती नामक श्वान के प्रति प्रेम का प्रसंग चित्रित है। `जी वे घर में नहीं हैं` शीर्षक निबंधानुसार समाज में चलती हुई बहाने बाजी को बताया गया है। अलग अलग बहानों को निबंधकार ने चित्रित किये हैं। जैसे कि एक पुत्र जो अपने पिता जी की जेब में हाथ डालते हुए पिता जी की नजरों में पड़ जाता है- तो वह बहाना बना लेता है अपनी चोरी छिपाने के लिए कहता है- पिता जी देखिए- आपकी जेब फट रही है, इसमें पैसे न डालिएगा, नहीं तो निकल पड़ेंगे। पिता अवाक् उस छोटे बच्चे की तरफ देखता रह गया कि क्या बहानेबाजी की है उसने। अब चपत मारना तो दूर घुड़की देने का भी सवाल न रहा- और उसे कहना पड़ा कि बेटा अपनी मां से कहना कि इसकी मरम्मत कर दे। बेटाजान उस समय शायद सोच रहे होंगे कि जेब की मरम्मत तो बाद में होगी- इस समय तो हमने तुम्हारी ही मरम्मत कर दी। यह बहाना-एक पर्दा है। सचाई और मनुष्य के बीच का पर्दा।

`झेंपो मत रस लो`[१६] शीर्षक निबंधानुसार यहां पर मनुष्य का एक और लक्षण चित्रित किया गया है कि आदमी की आदत है कि दूसरों को बेवकूफ बनते देखता है तो उसके फेफड़े और ओठ खिल पड़ते हैं। `यह सड़क बोलती है`[१७] शीर्षक निबंध के अनुसार समाज का चित्रण करते हुए बताया गया है कि समाज में कुछ लोग बोक्सों में बैठकर सिनेमा देखते हैं तो कुछ फर्स्ट क्लास में। सफेद पोश गरीब आदमी भी अपने बच्चों का दूध बन्द करके दस आने का टिकट खरीदते हैं। पुराने लोग कहते हैं पैसा हाथ का मैल है, पर आंखों की रोशनी तो हाथ का मैल नहीं उसे भी खोते हैं ये लोग। `यह किसका सिनेमा है` शीर्षक निबंधानुसार एक नारी है जो पहले

वैश्या थी बाद मेंगृहिणी । वह गिरने की हद तक गिरी और उठ गयी, उठने के ऊँचे से ऊँचे शिखर तक । फिर भी हमारे समाज का एक शिक्षित व्यापारी और अशिक्षित भंगी बरसों बीत जाने पर भी उसके गृहिणीपन को स्विकार नहीं करता । जिस तरह बिमा एजेण्ट हमारा बीमा करता है तो उसमें हमारा ही लाभ है, इतना ही नहीं हमारे परिवार और देश का भी लाभ इसमें है । आज के समाज में मनुष्य के दोषों को देखने की वृत्ति ही प्रधान है। हमें अपने लाभ से ज्यादा दूसरे की हानि या दूसरों के दोषों की अधिक चिन्ता है । `जब हम सिर्फ एक इकन्नी बचाते हैं`[28] शीर्षक निबंधानुसार जीवन में हम क्या करें? इस प्रश्न के समाधान और निर्णय का मापक तत्व है- सत्य, न्याय, औचित्य । जिस मनुष्य जाति या राष्ट्र को महामाया का यह वरदान प्राप्त है, सफलता उसके सामने हाथ बंधे खड़ी रहने में अपने जीवन की चरितार्थता मानती है । हर आदमी दूसरे आदमी को अपने से हीन समझता है, आवश्यकता है कि हमारी बात और काम ऐसे हों कि वह हमें श्रेष्ठ माने। इसका नाम है आदमी बनना ।

वैयक्तिक :

श्री कन्हैयालाल मिश्र `प्रभाकर` जी ने वैयक्तिक निबंधों में `मैं ` के माध्यम से अपने विचार प्रस्तुत किये हैं और अलग अलग व्यक्तियों के व्यक्ति तत्व पर प्रकाश डाला है । `दीप जले शंख बजे` निबंध संग्रह में से लिए गए कुछ वैयक्तिक प्रकार के निबंध यहां पर प्रस्तुत हैं। जैसे कि- `शंभुनाथशेष` शीर्षक निबंधानुसार मनुष्य की वृत्तियों की दीनता चित्रित की गई है । आज का आदमी बहिर्मुख है, फरनीचर से अपना धरातल नापता है । आज का साहित्यिक अपनी साधना के बल नहीं, मित्रों के प्रचार की नींव पर साहित्य में अपना स्थान बनाना चाहता है। एकान्त उसका बल नहीं, किसी पत्र में छपे अपने चित्र पर उसका विश्वास है। पर शेष उनमें एक थे जो चुपचाप अपनी उससाधना में लीन रहते हैं जो ईंट-ईंट भवन का निर्माण

करती है, वे थे- `शम्भुनाथ`। `नन्दा-गाटा` शीर्षक निबंधानुसार लाला नन्दलाल समाज में ऊँचा उठने चाहते थे वे उद्यमी थे, बाधाओं पर विजय पाना उनका स्वभाव था। समाज में उस वक्त अंगरेजी शिक्षा का प्रसार हुआ, समाज में मनुष्य रायबहादुरी, खानबहादुरी और दूसरे सरकारी सम्मानों के फीते से मापा जाने लगा मगर ऊँचाई का असली आधार वास्तव में आत्मा की ऊँचाई है। जो जीवन की श्रेष्ठता है। इसके बिना समाज ऊँचा नहीं उठ सकता। हर ईंट की उठान में नंदलाल के इरादों की उठान थी, उनके जीवन के प्रसंग से हम समझ सकते हैं कि बाहर का मान आदमी के लिए लाख वैभव हो उसका जीवन तो अपनों का आदर ही है। `चौधरी बिहारीलाल` शीर्षक निबंध में चौधरी बिहारीलाल जी हरिजन नेता थे। उनके चरित्र से हम देख सकते हैं कि तलवार लेकर तो सभी मैदान मार लेते हैं, पर तारीफ तो उनकी है जो खाली हाथ मुकाबला करें। वे ऐसे ही बहादुरों में थे। वे अंधकार में खो जाने को नहीं, उसे खा जाने को पैदा हुए थे। जिस तरह बवंडर तेल के दीपकों को बुझा देता है और विप्लव हृदय के अनेक दीपकों को जला देता है बिहारीलाल जी भी ऐसे ही एक विप्लवी दीपक थे। `हजरत मौलाना मदनी` शीर्षक निबंधानुसार मौलाना हुसैन अहमद मदनी एक इतिहास पुरुष थे। यहां पर उन दिनों की बात की गई है जब पहला विश्वयुद्ध अपनी पूरी गरमी पर था। मौलाना मदनी को ~~मिस्र में~~ गिरफ्तार किया गया और उन पर तरह-तरह के अत्याचार किये गये। पर न उनकी जबान खुली न चेहरे की सरलता पर कोई बल पड़ा। वे देश के लिए मर मिटनेवाले एक योद्धा थे। `और ये` शीर्षक निबंध में मनुष्य कुदरत के सामने कैसे झुकता है इसका दृष्टान्त सह वर्णन है। जुलाई १८३२ की बात है। अमेरिका के एक गांव के जंगल में भयंकर आग लग गई थी, और यह आंधी के वाहन पर चढ़ी गांव की ओर बढ़ी जा रही थी। जिसकी झपट में आये गांववासी अपना घर-सामान छोड़े जान हथेली पर लिये भागे जा रहे थे। और इसी भय, घबड़ाहट और निराशा के सूनेपन में भी एबरम गारफील्ड खड़ा था। उसका निश्चय था खून पसीना करके मैंने यह घर बनाया है, इसे छोड़कर नहीं भाग सकता। यह घटना यही बताती है कि मनुष्य ने

जब कुदरत पर विजय पायी तो रात की जहरीली हवा में उसका दम घुटने लगा। वह आग के से बचा पर विधाता के आगे कुछ नहीं कर पाया ।

संस्मरणात्मक :

प्रभाकर जी ने अनेक संस्मरणात्मक निबंध भी लिखे हैं । निबंधकार ने यहां `मैं` का माध्यम लिया है । `दीप जले शंख बजे` निबंध ~~अनेक~~ संग्रह में से `लाल ~~नमन~~ भगा फुहई`[१९] शीर्षक निबंधानुसार जब कोई उम्र में अपने से बड़ा हो तो उसके सामने नम्र रहना। किसी भी परिस्थिति में उसके प्रति अशिष्ट न होना-मेरा अर्थात् (निबंधकार का) मनुष्य का संस्कार होना चाहिए। इस संस्मरण में उदाहरण देकर निबंधकार यही बताना चाहते हैं कि जिस घर में बुजुर्गों का अपमान होता है वहां सब पुण्य नष्ट हो जाते हैं । जो अपने से उम्र में बड़े हैं वे पद प्रतिष्ठा, धन और बुद्धि में भले ही छोटे हो उनके सामने हमेशा अपना सिर नीचा और बोल मीठा रखना। उसके साथ कभी अशिष्टता का, उद्धतता का व्यवहार मत करना जो अपने से उम्र में छोटे हैं- अपना हाथ सदा उनके कन्धों पर रखना । यथाशक्ति उन्हें सहारा और ममता देना । `मीरू खलीफा`[२०] शीर्षक निबंधानुसार मीरू खलीफा एक साधारण स्थिति के आदमी थे- वे किसी भी काम में लगे हों, खबर मिलते ही तुरन्त रोगी को देखने चले जाते थे । उनका छोटा सा घर कस्बे और पास के देहातों के लिये पूरा धन्वंतरी भवन था । अपनी सफलता को वे खुदा की देन समझते थे । उस खलीफा ने एक मनुष्य का पैर जोड़ा था । डाक्टर लोग इसे काटने की फीस दो सौ रूपये मांग रहे थे । खलीफा ने दस घण्टे में वह पैर बांधा और एक महीने बाद जब उसे खोला तो एकदम सीधा था। पर खलीफा को इस सारे परिश्रम का फल छह रूपया मिला । देश के हीरे मोतीलाल`[२१] शीर्षक निबंधानुसार श्री कृष्णाकांत मालवीय जी का व्यक्तित्व चित्रित किया गया है । १९२० में वे आगरा जेल के अधिकारी थे, स्वर्गीय कृष्णाकान्त मौलाना हसरत मोहानि आदि प्रमुख कांग्रेस नेता जेल में बन्दी थे। १९३०-३२ के आंदोलनों में वे नायक जेलर रहे। पद की उन्नति का मोह कितना सबल

है कि उससे बचना कठिन ही नहीं- असम्भव है। पर नायक इस असम्भव को इतनी सरलता से संभव बनाये हुए थे कि शायद ही उन्होंने कभी सोचा हो कि वे कुछ कर रहे हैं। जन-गण-मन में वे निष्काम निष्ठा की जो प्रतिष्ठा कर पाये वही उनकी वास्तविक और सर्वोत्तम सफलता थी।

ऐतिहासिक :

उन्होंने कई ऐतिहासिक निबंध भी लिखे हैं- 'अखण्ड भारत की ब्रह्म वेला में'[22] शीर्षक निबंधानुसार भारत के नेताओं की अद्भुत इच्छा शक्ति का परिचय दिया है। गांधी जी के बलिदान ने देश में शांति स्थापित की तो नेहरू के व्यक्तित्व ने सेना की निष्ठा को बनाये रखा। और सरदार की शक्ति ने जूनागढ़ को तोड़ा। त्रावनकोर को झुकाया और उड़ीसा के राज्यों को मिलाकर अखण्ड भारत की नींव रखी। हैदराबाद के दैनिक 'इमरोज' का सम्पादक शोहैबुल्लाखान भारतमाता का ऐसा ही विरला पुत्र था। वह वर्चस्वी पत्रकार था। इस शोइब ने एक लेख लिखा था, उसकी नजरों में इतिहास का काम आज के सत्यों को ज्यों का त्यों कल की पीढ़ियों-को सौंपना नहीं-आज की कालिमा को श्रृंगार का स्वरूप देना ही है। उसके अनुसार वाणी आज की शक्ति है और कलम कल की माँ जो आज की भूलों और भलाइयों से भटके नहीं और भलाईयों से भरपूर हो। 'पैरिस भील की उस भयानक संध्या में' शीर्षक निबंधानुसार १६१४ फ्रान्स के जीवन मरण का समय था। पैरिस फ्रान्स की फौज के घेरे में घिरा हुआ था। किसी को भी शहर से बाहर जाने की आज्ञा न थी, क्योंकि राजधानी का सम्मान खतरे में था। वे दिन बड़े दयनीय होते हैं मनुष्य पर जब शैतान सवार होता है तो वह राक्षस बन जाता है। आज की दुनिया इसी हालत में है। चारों ओर खून की नदियां बह रही हैं, सारा संसार अशांत है। इसी समय जर्मन शिविर तोपों से गूंज उठा और पैरिस के किलों की तोपों ने आकाश में धुंआधार मचा दिया। पर फ्रान्स के साधारण नागरिक भी उन दिनों

विश्वासु थे- इसका उदाहरण दिया गया है ।

-रामवृक्ष बेनीपुरी -

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी लिखित निबंध संकलनों जैसे कि `माटी की मूरतें` मील के पत्थर, आदि से लिए गए निबंधों के विषय यहां पर प्रस्तुत है। उन्होंने अपने निबंधों में संस्मरण, व्यक्तित्व चित्रण और शब्द चित्र जैसे विषयों को वैयक्तिक निबंध के अन्तर्गत लिखा है ।

शब्द चित्र :

`माटी की मूरतें` निबंध संकलन में उन्होंने ज्यादातर समाज के अलग-अलग पात्रों के शब्दचित्र खींचे हैं। यहांपर रजिया, बलदेव सिंह, सरजू भैया, मंगर, रूपा की आजी, देव आदि अनेक पात्रों के चित्रण हैं ।

`रजिया`[२३] शीर्षक निबंधानुसार रजिया का चित्रण किया गया है । वह एक चूडिहारिन थी । यहां पर एक युवक के रूप में निबंधकार ने भावुकता बताई है । गांव के सब लड़कों और बहू-बेटियों को इस रजिया के प्रति एक अज्ञात आकर्षण था। रजिया का बचपन, जवानी और बुढ़ापा इसी गांव में बीता । जहां लेखक रूपी युवक रहता है । मरते दम तक वह निबंधकार से सम्बंध रखती थी। उसकी पोती भी (रजिया) वही चेहरा लिए हुए निबंधकार के सामने आती है । `बलदेव सिंह` शीर्षक निबंध में बलदेव का चित्र खींचा गया है । वह एक नौजवान है उसका स्वभाव बच्चों सा निरीह, निर्विकार है । बच्चे उन्हें देखते ही लिपट जाते हैं और बूढ़ों की आंखें हमेशा उन पर आशीर्वाद बरसाती हैं। गांव भर में वह बड़ा ही बहादुर नवयुवक कहलाता था । सरजू भैया[२४] शीर्षक निबंध में सरजू भैया गांव के लम्बे और दुबले आदमियों में गिने जा सकते हैं। सरजू भैया की यह जो हालत है वह अपने कारण नहीं, पराये उपकार के कार्यों में उन्होंने अपना शरीर सुखा लिया है । गांव के लोगों के सब कठिन काम करने

में वे कुशल थे। उनका व्यक्तित्व अनुकरणीय और पूजनीय है । `मंगर` शीर्षक निबंधानुसार मंगर गरीब और स्वाभिमानी था, उसके लिए बैल-बैल नहीं-साक्षात् महादेव थे । उसकी पत्नी मकोलिया मंगर की आदर्श जोड़ी थी, मर्दों की अपेक्षा औरतें अपने को परिस्थिति के सांचे में ज्यादा और जल्द ढाल सकती है इसका उदाहरण है यह मैकोलिया । `रूपा की आजी` शीर्षक निबंधानुसार- रूपा की आजी डायन है कितने ओझे बुलाये गये - इस डायन को सर करने के लिये । एक दिन शिवरात्री का मैला लगा, उसमें लोग उस पर ढेले फेंकते हैं और भागाभागी में वह एक कुएं से जा गिरती है, मर जाती है । देव शीर्षक निबंधानुसार बालगोविन्द भगत साधु थे, साधु की सब परिभाषाओं में खरे उतरनेवाले थे । वे कबीर को साहब मानते थे । उन्हीं के गीत गाते और उन्हीं के आदर्शों पर चलते थे स्नान पर वे उतनी आस्था रखते जितनी संत समागम और लोकदर्शन पर ।

जीवन चरितात्मक :

श्री बेनीपुरी जी ने अपने निबंधों में जीवन चरित्र भी लिखे हैं। `यूरोप के कलाकार`२५ शीर्षक निबंधानुसार कलाकारों के जीवन चरित्र को बताते हुए यूरोपीय कलाकार लियोनार्दो द विंची का चरित्र चित्रित किया गया है इसे यूरोपीय कला का पिता कहा गया है। वह कलाचार्य था, ईसा का अन्तिम भोजन, `मोनालिसा` आदि चित्र बनाए जो यूरोप की सर्वोत्कृष्ट कलाकृतियां माने जाते हैं- इसके बाद माइकेलएंजलो महानतम था। इसका जन्म फ्लोरेंस में, एक गरीब के घर में हुआ था। अपनी कला में मस्त वह दिन रात काम करता रहा । इसके बाद राफेल आता है जो यूरोपीय कला पर अपनी स्थायी छाप छोड़ गया। हालपिन स्पैन एक फ्लैमिश कलाकार था और रेम्ब्रांड वह कलाकार जिसे प्रकृति और समाज ने समान रूप से सताया। चूर-चूर किया परन्तु जिसने पराजय नहीं स्वीकार की । इक्कीस वर्ष में वह अपने शहर का प्रसिद्ध चित्रकार बन गया । फ्रांस के तीन कलाकार दोमिये, माने,लाउत्रे। इन

तीनों के रंग-दो मिये कारटून का पिता, मानें-यथार्थवादी चित्रण का आचार्य, लाउत्रे- बडे घराने का लाड़ला, घुड़सवारी में दोनों टांग तोड़कर पंगु बन गया। 'रोटी और शराब'[२६] शीर्षक निबंधानुसार हाग्नात्सियो सिलोने इटली के प्रभावशाली पुरुष है। अपनी लेखनी के द्वारा वे इटली के प्रजातंत्र को ऊंचे स्तर पर ले जाने में संलग्न रहे। वे मुख्यत: उपन्यास लिखते थे जिनमें 'रोटी और शराब' उनकी प्रतिमा और लेखनकला का उत्कृष्टतम उदाहरण है। इस उपन्यास का प्रारंभ हुआ था एक पादरी की ज्ञानवाणी से। उसका अंत होता है पवित्रात्मा की करुण पुकार से। एक भारतीय आत्मा' शीर्षक निबंध में माखनलाल चतुर्वेदी को एक भारतीय आत्मा का गौरव प्राप्त है। उनके पिता जी स्कूल मास्टर थे। पंद्रह, सोलह से लेकर पच्चीस छब्बीस तक की उम्र में 'एक भारतीय आत्मा' पर तीन सज्जनों का प्रभाव पड़ा। जिसके कारण उनमें कवि-प्रतिभा, आध्यात्मिकता और देशभक्ति का पूर्ण विकास हुआ। हिंदी के अनन्य सेवक थे। उनकी स्वर्गीय पत्नी ही उनकी ~~कविता~~ कविता का बिंदु बन गई।

व्यक्तित्व चित्रण :

श्री बेनीपुरी जी ने अलग-अलग महानुभावों के व्यक्तित्व चित्रण अपने निबंधों के द्वारा करते हैं। प्रेमचंद अमर हों'[२७] शीर्षक निबंधानुसार प्रेमचंद जी का रेखाचित्र खींचा गया है। उनके सीधेपन में भी बांकपन था। जो सभी असाधारण पुरुषों में पाया जाता है। इसी बांकपन ने उन्हें समाज, सरकार और पूंजीवाद से मोर्चे पर मोर्चे लेने को प्रेरित किया। हिन्दी साहित्य विकासधारा की दूरी जानने के लिए जो कुछ के मील के पत्थर हमें गिनने पडते हैं उनमें से एक को प्रेमचंद के नाम से अभिहित किया जा सकता है। उनकी रचनाएं एक बिलकुल नए वर्ग के नेतृत्व का आभास देती है। प्रेमचंद उस युग में हुए जब हमारा समाज, हमारा देश एक बड़े संक्रांति काल से गुजर रहा था। बड़ी छोटी शक्तियां आपस में टकरा रही थी। हमारे देश के कोने-कोने में जो महाभारत हो रहे हैं इनके सजीव चित्रण के लिए हमें वेदव्यास चाहिए था।

प्रेमचन्द हमारे इस युग के वेदव्यास थे। उनको केवल एक कलाकार की नहीं, एक योद्धा का जीवन भी व्यतीत करना पड़ा । वे हिन्दी के प्रथम जन साहित्य-निर्माता थे। 'हमारे राष्ट्रपति'[२८] शीर्षक निबंधानुसार असहयोग आंदोलन का वर्णन किया गया है । देश में उस समय भी बड़े-बड़े नेता थे देशबंधु चितरंजनदास, पं० मोतीलाल नेहरू, लाला लजपतराय, अलीबंधु । इन सबमें राजेन्द्र बाबू समूचे बिहार प्रान्त का प्रतिनिधित्व करते थे । इनकी रचनात्मक प्रतिमा की धाक तो प्रारंभ से ही देश पर छाई हुई थी। पटना में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का शानदार अधिवेशन उन्होंने ही कराया । उन्होंने अपनी 'आत्मकथा' हिन्दी में लिखकर इस भाषा को बड़ा गौरव प्रदान किया । 'जो शब्दश: आचार्य थे' शीर्षक निबंधानुसार मानव-जीवन की तीन अनुपम उपलब्धियां हैं- ज्ञान, कर्म, साधना । आचार्य नरेन्द्र जिनमें ज्ञानी, कर्मवीर और साधक इन तीन रूपों का समन्वय हुआ था । उन्होंने स्वतंत्र भारत को जितने योग्य शासक और जनसेवक दिये उतने किसी ने भी नहीं दिए । १९३० के सत्याग्रह आंदोलन के साथ पूर्ण रूप से आचार्य जी राजनीति के क्षेत्र में कूद पड़े । वे वे उन साधकों में थे जिनकीसाधना पर देश को अभिमान रहेगा । ज्ञानी, कर्मयोगी, साधक के अतिरिक्त वे मानव नरेन्द्र देव भी थे । 'कथा के ये बन जादूगर' शीर्षक निबंध में टालस्टाय के जीवन पर बड़ी कड़ी निगाह जल डाली गई है । वे शराबी थे, जुआड़ी थे । अत्यन्त कामुक थे । उन्होंने फौज में काम किया था, प्रतिदिन आठ दस छ: घंटे वे जरूर लिखते थे । गांधी जी को टालस्टाय की इस अनोखी जीवन पद्धति ने सभी आत्मकथाएं झूठी है । वह कहता है एक विशाल वटवृक्ष की हरी-हरी पत्तियों, लम्बी -लम्बी घटाओं और मोटी-मोटी डालों को ही देखकर मनुष्य का मन न तृप्त नहीं हो जाता उसमें उत्कण्ठा जगती है उसकी जड़ें देखने को जो इन सबकी आधार है । बर्नार्ड के पिता श्री जार्जकार शॉ थे । बरनार्ड शॉ के मत से मेरे जैसा लैटिन व्याकरण कोई लड़का नहीं जानता था । वे दस वर्ष के भी नहीं थे तब बाइबिल और शेक्सपियर से ओतप्रोत थे । उनके अनुसार साहित्य ही एक ऐसा सभ्य पेशा है जिसकी अपनी कोई पोशाक नहीं। इसीलिए मैंने इस पेशे को चुना। 'कोई सुखी नहीं'[३०] शीर्षक निबंध में आन्द्रे मावरोई की आत्मकथा है जो फ्रांस का सुप्रसिद्ध

लेखक है। बचपन से ही लेखक बनने की आकांक्षा थी। पहले युद्ध से लौटने के बाद उसकी प्रवृत्ति साहित्य की ओर झुकी ।

संस्मरणात्मक :

बेनीपुरी जी ने कई संस्मरण विषयक निबंध लिखे हैं । बापू की कुटिया में[31] शीर्षक निबंधानुसार बापू का जीवन चरित्र खींचा गया है और बापू की कुटिया का वर्णन भी किया गया है । हे राम । इस शब्द ने कहा बापू अब हमारे बीच नहीं रहे । वह तो हमसे कब के छीन लिये गये । उस दिन गोलियों के तीन भयानक धड़ाकों के बीच, दुनिया ने अंतिम बार जब उनके मुख से 'हे राम' सुना था । बापू की कुटिया के तीन भाग हैं । बांस और लकड़ी की बनायी हुई यह कुटिया है । कुटिया की चारों ओर लगाये फूल, पत्तों, पेड़ों का वर्णन हुआ है । इस कुटिया की दक्षिण तरफ बा की कुटिया और उत्तर में महादेव भाई की । आज न बापू हैं, न बा न महादेवभाई ।

गुलाबराय :

श्री गुलाबराय जी ने ललित निबंध क्षेत्र में अपनी लेखनी चलाई । 'मेरे निबंध जीवन और जगत', फिर निराशा क्यों ?' आदि अनेक ललितनिबन्ध संकलन है । उन्होंने अपने इन संकलनों में वैयक्तिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक और मनोवैज्ञानिक आदि विषयों को चुना है । यहां पर उनके निबंधों की वर्ण्य वस्तु को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है ।

वैयक्तिक :

'मेरी दैनिकी का एक पृष्ठ'[32] शीर्षक निबंधानुसार कवि, लेखक और दार्शनिक प्राय: इस बात के लिए बदनाम हैं कि वे कल्पना के आकाश में विचरा करते हैं। आजकल दार्शनिकों को ईश्वर में विश्वास नहीं है । पारिवारिक जीवन में सामाजिक

जीवन का समन्वय करना कभी-कभी बड़ी समस्या हो जाता है। ऐसा हाल प्राय: बहुत से लेखकों का होगा। `आत्मविश्लेषण` शीर्षक निबंधानुसार जीवन का प्रत्येक क्षण भगवान की देन है, प्रत्येक वर्ष ईश्वर की अमूल्य देन है। उत्सवप्रियता मनुष्य की सहज प्रवृत्ति है, उसकी सामाजिकता, सहज वृत्ति की परिचायक है। यहांपर निबंधकार कहते हैं कि वास्तविक दु:खों से जिनमें स्वजन की बीमारी मुख्य है-अवश्य दु:खी हुआ हूं। किन्तु कल्पित दु:खों विशेषकर आर्थिक कठिनाइयों से मैं विचलित नहीं हुआ हूं। साहित्यिक ज्ञान के खोखलेपन के साथ जिसको प्राय: मैं प्रकट नहीं होने देता हूं। मुझमें मौलिक गांभीर्य का भी अभाव रहा। मुझमें कमजोरियां रही, और अपनी कमजोरियों के ज्ञान ने दूसरों की कमजोरियों के प्रति उदार बनाया। सत्य की मैंने हृदय से सराहना की किन्तु भीरुतावश असत्य का उग्र विरोध करने का साहस न कर सका। भ्रष्टाचार से मैं यथासम्भव बचा किन्तु दूसरों को भ्रष्टाचार से न रोक सका। `मेरा मकान`[33] शीर्षक निबंधानुसार किराए के मकान मिल सकते थे। थोड़े किराए के मकान पसन्द नहीं आते और अच्छे मकानों का किराया इतना अधिक था कि इसके प्रतिमास अदा करने में मेरे पैंट मोंर से बाहर निकल जाते थे। कल्पना के कल्पतरु के नीचे बैठ नये मकान के स्वर्णमय स्वप्न देखने लगा। मकान के लिए जमीन तलाशने लगा, जिस प्रकार सिंह दूसरे का मारा हुआ शिकार नहीं खाता-उसी प्रकार मैं दूसरे की खरीदी हुई जमीन में से एक भाग खरीदना पसन्द नहीं करता था। मैं अपने को अच्छा ही आदमी सिद्ध करना चाहता था और आंख बंदकर गढ्ढे में मकान बनाने के कार्यक्रम में गढ्ढे में कूद पड़ा। बुद्धिमान पुरुष का यह कर्तव्य होता है कि पहले व्यय का अनुमान कराकर कार्य आरंभ करे। गढे को सात फीट खोदने के बाद पक्की जमीन के दर्शन हुए यह देख निबंधकार को उतनी ही प्रसन्नता हुई जितनी जहाज के यात्री को समुद्र का किनारा देखने पर। यहां पर आगे बताया है कि यदि लेखक लोग शब्दों के महल और हवाई किलों के अलावा म ईंट-चूने के मकान बनाने का भी

साहस करें तो नीम चढ़े करेले की बात हो जाय । रात्रि को जब घर लौटता हूं तो कबीर के बताए हुए ईश्वर मार्ग की कनक और कामिनी रूपिणी बाधाओं के समान 'सूद' और 'लाल' की कोठियां मिलती हैं । मेरे नापिताचार्य [34] शीर्षक निबंधानुसार मैं अपने को रक्तपात से बचाये रखने की ओर विशेष ध्यान रखता हूं । इसी भय से सांप्रदायिक झगड़ों को अपने पास नहीं फटकने देता । मेरे नापित महोदय श्री बेनीराम जी से मेरा बहुत पुराना परिचय है । भूतभावन भगवान शंकर जिस प्रकार स्वयं दिगंबर विरूप और कपाली रहकर भी दूसरों को श्री और सम्पदा प्रदान करते हैं ठीक उसी प्रकार बेनीराम जी अपने बाल बढ़ाये रखकर भी दूसरों के मुख मंडल पर पालिश द्वारा उनकी श्रीवृद्धि किया करते हैं । मेरे नापितदेव न तो वामन ही हैं और न विशालकाय । मेरी बुद्धि की भांति वे भी मध्य श्रेणी के हैं और कुछ लघुता की ओर झुके हुए हैं । जैसा उनका मुख, वैसी उनकी छोटी मूंछे और आंखें हैं । जैसे मैं अपनी पोशाक की व्यवस्था सुधारने में असफल रहता हूं वैसे ही वे अपनी पेटी की व्यवस्था सुधारने में असमर्थ रहते हैं क्योंकि वह पेटी उनके स्वरूपानुरूप है ।

विचारात्मक :

गुलाबराय जी के विचार प्रधान निबंधों को विचारात्मक श्रेणी में रखा जासकता है । 'फिर निराशा क्यों' ? शीर्षक निबंधानुसार मनुष्य के आदर्शों को प्रस्तुत/\ किया गया है। कविगण संसार की विषमता को देखकर कहते हैं — 'जगन्नां संसारः' किम मृतमयः किं विषमयः । किंतु जो लोग विष से भागते हैं, उन्हें अमृत के दर्शन भी नहीं होते । शिव जी ने कालकूट पिया तो उन्हीं के मस्तक को पुण्य पियूषस्त्रायी सुधांशु ने विभूषित कर उन्हें चंद्रशेखर की पदवी दिलायी । वैसे ही युद्ध की वार्ता दूर से ही अच्छी लगती है, किन्तु जो लोग युद्ध में लड़ते हैं ~~बराबर-आनन्द~~ वे युद्ध की कठिनाई के साथ-साथ युद्ध का सुख भी अनुभव करते हैं । अज्ञान के बराबर आनन्द कहीं नहीं है । संशय के भंवर में पड़ने ही के भय से मानसी गंगा के पुण्य ~~सर्लिल~~ सलिल में स्नान न करना कायरता है यही नहीं वरन् अपने नैसर्गिक -

अधिकारों को खो बैठना भीषण आत्महत्या है। सारांशत: वास्तव में जिसे हम दीवार कहते हैं वह हमारे थके हुए मन की भ्रान्ति है। `मनुष्य की मुख्यतया`[35] शीर्षक निबंधानुसार निबंधकार ने अपने विचार प्रकट करते हुए बताया है कि आत्म प्रशंसा ही मनुष्य का प्रधान गुण है। आत्मविचार ही मनुष्य कीमुख्यता है। यही उसे संसार का शिरोमणि बनाता है। कवियों और महात्माओं की वाणी में ईश्वर के ही ज्ञान की झलक होती है। मनुष्य पाप कर सकता है वही उसकी मुख्यता है। नहीं तो मनुष्य और पशु में अंतर ही क्या? `सत्तासागर` शीर्षक विचारानुसार चेतन और अचेतन दोनों एक ही सत्ता के अंग हैं। स्त्री- पुरुष की भांति एक दूसरे के सहायक हैं। दो होते हुए भी एक हैं। सारांशत: मनुष्य ही सत्ता सागर का छोटा सा चित्र है। `समष्टि व्यष्टि`[36] शीर्षक निबंध में निबंधकार के अनुसार हमारे शरीर और हमारे विचार भिन्न-भिन्न हैं। क्या हमारे विचारों की भिन्नता हमारे पार्थक्य का कारण है भेद द्वारा ब्रह्म भी अपनी वास्तविक सत्ता प्रकट करता है। भेद और अहंकार संसार के लिए आवश्यक है, भेद ही संसार को सरस बनाता है। व्यष्टि रूप से भिन्न होते हुए भी समष्टि रूप से हम सब एक हैं। बिना समष्टि के व्यष्टि का अस्तित्व संभव नहीं और व्यष्टि के बाहर समष्टि का कोई पदार्थ नहीं। जिस तरह वृक्ष वन से अलग नहीं, तरंग समुद्र से नहीं उसी तरह बिना एकता भेद असंबद्ध और श्रृंखलाहीन हैं। `हमारा कर्तव्य और हमारी कठिनाइयां`[37] शीर्षक निबंध में लेखक के विचारानुसार सागर का प्रवाह निश्चित करने में हमारा भी कुछ हाथ है। हमारे कर्तव्य में ही हमारी क्रिया और ज्ञान की भी एकता है। कठिनाइयों से ही हमारी शक्ति बढ़ती है, हमारा अभ्यास दृढ़ होता है।

`सौन्दर्योपासना` शीर्षक निबंधानुसार सुंदर वस्तु तभी तक सुंदर रहती है जब तक हम उससे किसी प्रकार का लाभ उठाने की चेष्टा नहीं करते। जहां लाभ उठाने की चेष्टा की गई बस सौन्दर्योपासना के आनंद का लाभ हाथ से जाता रहा। `कुरूपता`[38] शीर्षक निबंध में लेखक के विचारानुसार कीचड़ से ही कमल की उत्पत्ति है,

और गुलाब भी कटीली टहनियों में खिलता है । रूप हीन वस्तु से तभी तक घृणा रहती है जब तक हम अपनी आत्मा को संकुचित बनाये रखते हैं। आत्मा के सुविस्तृत और औदार्यपूर्ण हो जाने पर सुंदर और असुंदर दोनों ही समान प्रिय बन जाते हैं। ठीक वैसे ही रूपहीन पदार्थ निरादर का विषय नहीं- तिरस्कार का पात्र नहीं- वह भी उसी सुविशाल ~~समम~~ सत्ता सागर का एक कण है जिसका सुन्दर पदार्थ है । `विश्व प्रेम और विश्व सेवा`[३६] शीर्षक निबंध में निबंधकार के मत से ऐसा कोई नहीं जो किसी न किसी काल में अपना व्यक्तित्व न छोड़ता हो, जहां व्यक्तित्व गया वहीं प्रेम की विजय ध्वनि हुई ! प्रेम का अर्थ ही है व्यक्तित्व का परित्याग। विश्व प्रेम और विश्व सेवा द्वारा ही व्यक्तित्व का जटिल बंधन छूट सकता है । समष्टि व्यष्टि का एकीकरण हो सकता है । मनुष्य अपूर्ण है, हमारी अपूर्णता ही हमारी विशेषता है । `पुनीता पापी` शीर्षक निबंधानुसार वेद, शास्त्र, पुराण, स्तुति आदि सभी मुक्त कंठ से जघन्य पापों से बचने की आज्ञा देते हैं किन्तु पापी को त्याज्य नहीं बताते । मनुष्य ही एक ऐसा जीवधारी है जो पाप कर सकता है । हमारा पिछला जीवन बुरा है, यह हमारे भय का कारण नहीं । यदि हम अगले जीवन को सुधार सकते हैं तो हमारा सारा जीवन सुधर जायगा । `स्वयंभू सुधारकों का सुधार` शीर्षकानुसार हमारे सुधारक हमसे गिरे हुए हैं। वे समझते हैं वे ही बड़े विचारवान हैं। हमें अपने सुधार के लिए विशेष धन की दरकार नहीं। हमारे सुधार में हमारे सुधारकों का भी नेत्रोन्मीलन हो जायगा । हम अपने सुधार द्वारा सबका सुधार कर सकते हैं । `दुःख` शीर्षक निबंधानुसार दुःख में ही ईश्वर की याद आती है । दुःख से सांसारिक सम्बंध के सत्या-सत्य का निर्णय हो जाता है । दुःख को यहां पर मनुष्य का आत्मज कहा है । इसी के जन्म से भावी सुख की पूर्ण आशा रहती है । `भूल` शीर्षक निबंध में निबंधकार के अनुसार भूल केवल मनुष्य कर सकता है, मशीन या जानवर नहीं । भूल से ही भिन्न-भिन्न मार्गों की यथार्थ उपयोगिता का ज्ञान होता है । भूल से जो संसार का लाभ होता है उसी की ओर ध्यान दो,

मूल करने वाले, व्यक्ति की हानि पर नहीं। मूल ही हमारी उन्नति का द्वार है। 'हमारा नेता कौन' शीर्षक निबंध के अनुसार आगे की ओर देखना ही उन्नति के पथ में पैर रखना है जो नीचों में रहकर ऊँचे आदर्श रखे वे ही हमारे नेता हैं। नेता की पदवी सबको मिल सकती है किन्तु जो अपने को हमसे आगे बढ़ा हुआ समझते हैं- वे इस गौरव को नहीं प्राप्त कर सकते। 'कर्मयोग की मोक्ष' शीर्षक विचारानुसार जिन कर्मों का मूल केवल स्वार्थ साधन में संकुचित नहीं हो सकता, जो कर्म सत्ता सागर के जलकणों में सामंजस्य स्थापित कर संसार सागर की उन्नति के विकास मेंयोग देते हैं वे ही कर्म मोक्षप्रद हैं। संघर्ष शीर्षक निबंधानुसार आर्थिक उन्नति के लिये न्याय और धर्म की उपेक्षा की जाती है जो स्वार्थ व्यक्तियों में संघर्ष का कारण है वही जातियों में खींचातानी उत्पन्न कर रहा है। आज विवाह का आधार इन्द्रियों का आकर्षण हो गया है मन का नहीं। संसार संघर्षमय अवश्य है किन्तु कम से कम अपने अंश में संघर्ष कम कर सकते हैं। 'विफलता' शीर्षक निबंध में निबंधकार के मत से सफलता चाहे जल्दी हो चाहे धीरे चिरस्थायिनी होनी चाहिए। विफलता नवीन मार्गों की खोज में सहायक होती है, विफलता की कुंजी से नए द्वार खुल जाते हैं। पराजय और विफलता हमारी भावी उन्नति की साधक शक्तियां हैं।

सामाजिक :

श्री गुलाबराय जी ने समाज को अलग-अलग स्तरों पर देखा, परखा और उसका चित्रण किया है।

'राष्ट्रोन्नति में जातीय गर्व की भावना'[40] शीर्षक निबन्धानुसार रोटी के बिना जीवन निर्वाह नहीं होता यह तो ठीक है किन्तु मनुष्य केवल रोटी पर ही नहीं जीता उसमें स्वाभिमान भी होता है। वैयक्तिक स्वाभिमान से भी जातीय स्वाभिमान अधिक महत्व रखता है। हममें राष्ट्रीयता की वह सामूहिक

चेतना नहीं जो स्वराज्य के पहले थी। हम राष्ट्र के किसी भी क्षेत्र में किसी भी व्यक्ति की सफलता को अपनी सफलता और किसी व्यक्ति की विफलता को अपनी विफलता समझें। वैयक्तिता का आतिथ्य प्रान्तीय भावना, सांप्रदायिकता और दलबन्दी जातीय गर्व में बाधक होता है। 'सांप्रदायिकता और राष्ट्रीयता' शीर्षक निबंधानुसार अपने धर्म को बलपूर्वक दूसरों की सुविधाओं का ध्यान न रखना सांप्रदायिकता का दूषित रूप है। राष्ट्र को समृद्ध बनाने के लिए सम्प्रदायों में अवरोध ही नहीं वरन् पारस्परिक प्रेम भी अपेक्षित है। साम्प्रदायिकता बुरी है चाहे मुसलमानों में हो चाहे हिन्दुओं में। इन साम्प्रदायिक झगडों से देश की शक्ति क्षीण होती है और पारस्परिक वैमनस्य जड़ पकड़ जाता है। 'भारत का समन्वयवादी सन्देश'[४१] शीर्षक निबंधानुसार स्वराज्य से हमारी आर्थिक समस्याएं चाहे हल न हों, फिर भी हम उनके हल की ओर अग्रसर ही हो चले हैं। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष हमारे यहां चार पुरुषार्थ माने गये हैं। धर्म मोक्ष, काम की भावना जिस प्रकार व्यक्ति के जीवन में आवश्यक है उसी प्रकार राष्ट्र के लिए भी परम वांछनीय है। 'अधिकारी और अधिकृत'[४२] शीर्षक निबंधानुसार अधिकारी और अधिकृत भारतवर्ष की ही नहीं वरन् विश्व की समस्या है। इसका क्षेत्र बहुत व्यापक है, दुनिया के जितने संघर्ष हैं वे अधिकारों पर ही आधारित हैं। नीति और न्याय अधिकार के जनक, पोषक और सहायक हैं। यहां पर राजनीतिक क्षेत्र में अधिकारों की समस्या पर विचार प्रस्तुत है। बहुमत का अधिकार कभी-कभी दूसरे पक्ष के सत्य की उपेक्षा कराता है। भारत में अधिकारों में वर्णभेद के आधार पर आजकल कोई भेद नहीं है। पर सामाजिक क्षेत्रों में अब भी बना हुआ है। उच्च वर्ग के लोग समाज से प्राप्त उच्चता के अधिकारों को छोड़ना नहीं चाहते। नौकर को मालिक से भी अधिक संयमी और सन्तुलनशील बनना पड़ता है। पति-पत्नी का प्रेम और सौहार्द का सम्बंध है। पिता-पुत्रों पर अपना स्वाभाविक शासनाधिकार समझते हैं। सास- बहू का पिता-पुत्र के सम्बंध से भिन्न सम्बंध रहता है।

'गांधीवाद और भारतीय परम्परा'[43] इस शीर्षक निबंधानुसार गांधी जी भारतीय संस्कृति में पूर्णतया दीक्षित थे। सत्य मेव जयते, अहिंसा परमोधर्मः के पाठ को उन्होंने हृदयंगम करके अपने जीवन और भारतीय राजनीति का मूल मंत्र बनाया था। नम्रता भारतीय संस्कृति को एक विशेष गुण बताया गया है। गांधी जी ने इन व्रतों के अतिरिक्त क्षमा और अक्रोध को अपनाया था। अर्थात् क्रोधी को अक्रोध से असाधु को साधुता से जीतना चाहिए।

-वियोगी हरि -

श्री वियोगी हरि जी ने 'यों भी तो देखिए' निबंध संकलन में कवि, कलाकार, चित्रकार आदि के पृथक-पृथक व्यक्तित्व का चित्रण किया है।

'कवि से' शीर्षक निबंधानुसार कवि शब्द से मनीषी परिभू स्वयंभू आदि कितने ही उट-पटांग अर्थों का बोध प्राचीनकाल में हुआ था। कोई भी काल और स्थान पर यदि उनकी नजर में रसिक लगें तो वह तुरन्त ही उसकी कविता बना देते थे। वे जीवन को साखियों और सबदों में ढालना चाहते हैं। वे ग्रामीणों को कोसते हुए कहते हैं कि बूढ़े विधाता ने उन ग्रामीणों को रस, कला और सौन्दर्य परखने की अक्ल आखिर क्यों नहीं दी। कवि जब रचना करने बैठता है तो उनकी ध्यानावस्था को देखकर मूढ़ श्रमजीवी बेचारा हकबका जाता है। कवि की साधना की जो कद्र नहीं करते वे नरपशु कहे गए हैं। कहां यह समृद्ध कलाकार और कहां दरिद्र धान्यकार। 'कलाकार से' शीर्षक निबंध में कलाकार को देखकर कई लोगों में कुतूहल होता है जिस तरह से राजनीति में सीधे बात करना गुनाह है वैसे ही कला में पेचीदा मार्ग से हटना बेढंगापन कहलाता है। कलाकार हमेशा कुछ टेढ़ा-मेढ़ा सा पसन्द करेगा। विधाता की सृष्टि में कलाकार इस कला को सुधारने-संवारने से कोई दिन थकान का अनुभव नहीं करते। इन कलाकारों में से कई ऐसे भी

रहते हैं जो जीवन जीने को ही एक कला मानते हैं। जिस तरह से विश्वामित्र ~~निरस्लौ-सृ~~ ने अपनी एक अलग ही सृष्टि रच डाली थी तुम कलाकारों ने भी तो अपनी निराली सृष्टि रची है। आज तो कला के मनमोहक द्वार पर नीति वह एक अपरिचित सी, अजनबी सी खड़ी है। और कला इस अजनबी मेहमान का क आतिथ्य कैसे करेगी ? यह बताया है। घड़े के औंधेपन में ही कलाकार की कला कहलाती है. यही सत्य है। चित्रकार से शीर्षक निबंधानुसार चित्रकार अपनी अंगुलियों से दृश्य का वर्णन और कल्पना को चित्रित करता है। वह अलग-अलग विषयों पर अपनी कला को आजमाता है। कला की उत्कृष्ट साधना(चित्रकार की) तुम्हारी निर्बाध गति से सतत चलती रहती है। क्योंकि कला कैवल कला के लिए ही होती है। सामान्य और अरसिक दर्शकों को कलाकार की नग्न आकृतियों में अश्लीलता की गंध आती है। जब कि कला के प्रशंसक अज्ञात रूप में खिंची हुई उन अद्भुत रेखाओं की अव्यक्त कला को उच्च कोटि की कला मानते हैं। उनकी प्रत्येक छबी में उनकी अपनी शुद्ध मान्यता के अनुसार अलग-अलग रहस्य रहता है। मानव जीवन के हित में चित्रकार और कवि का पेशा अधिक मूल्यवान और आवश्यक है। लेखक से शीर्षक निबंधानुसार लेखक जनता पर बड़े एहसान करते हैं फिर भी उनकी कद्र समाज में नहीं होती। लेखक हमेशा यही मानते हैं कि वह जो कुछ लिख रहे हैं उससे प्रभावित होनेवाले लोगों की इस दुनिया में बहुत बड़ी संख्या है। लेखक अपनी लेखन कला में सामान्य आदमी से अलग स्वान्त: और असामान्य से कहीं दूर फेंक दिया गया है। वह हमेशा सुखांत ही लिखता है। पत्रकार से शीर्षक निबंध में पत्रकार नये समाचारों के उत्पादक हैं। उनकी दृष्टि में अमंगल ही सृष्टि का आदि है। और अमंगल ही उसका अंत। अस्थिरता और अशांति उनके जीवन का केन्द्र या प्रतिरूप है। अखबारों में अध्ययन की सामग्री बहुत विस्तृत रहती है। इनमें से चित्रपटों का विज्ञापन तो मुख्य रूप में रहता है इसे पत्रकारों का ~~सबसे~~ सर्वविटामिन युक्त आहार कहा गया है। उनका ज्ञान दूर दूर के देशों का होता है। सब कुछ विराट ही विराट। उन्हें अखिल विश्व ब्रह्मांड के

कल्याण की चिन्ता रहती है। वे सोचते हैं अगर अखबार न निकाला गया तो उनके विचारों का लाभ उठाये बिना दुनिया कहीं डूब न जाय। और इसमें सन्देह नहीं कि पांच सात वर्षं के लिए अखबारों को यदि पूर्ण विश्राम दे दे तो ज्ञान का पवित्र आघात न पडने से विश्व कल्याण का स्रोत एकदम बन्द हो जायगा। 'प्रचारक से' शीर्षक निबंधानुसार प्रचारक का कार्य प्रचार का ही रहता है। इसमें विचारों के प्रकार पर ध्यान नहीं दिया जाता, हर प्रकार के विचार प्रदर्शित किये जाते हैं। जो लोग प्रचारयंत्र का श्रद्धापूर्वक न तो पावन उपयोग करते हैं और न उससे पूरा नैतिक लाभ उठाते हैं वे निश्चय ही भाग्यहीन कहे जाते हैं। 'राष्ट्रकर्मी' शीर्षक निबंधानुसार राष्ट्र के हित चिंतन में ही उसका सारा समय कटता है। सीता की सारी दिनचर्या केवल राम की निष्ठा तक ही सीमित रही, ऐसी निष्ठा राष्ट्र के प्रति उदासीन ही हो सकती है और इसीलिए कवियों ने सीता को 'जगज्जननी' तो कहा पर राष्ट्र जननी कदापि नहीं। राष्ट्रकर्मी के लिए इतना ही काफी है कि उनकी आवाज कितनी लम्बाई चौडाई तक पहुंचती और गूंजती है। क्रान्तिकारी आदमी लाखों में से भी पहचाने जाते हैं। बड़े-बड़े जुलूसों में उन्हें आनन्द और उन्माद मिलता है।

'ग्रामोद्धारक से' शीर्षक निबंधानुसार ग्रामसेवक वे हैं जो अपने आपको देहातियों जैसे ही गंवार बना लेते हैं। कभी उनके हाथ में झाडू रहता है तो कभी खुरपी और कभी कुदाल। उनका रहन-सहन सीधा-सादा रहता है जो गांव के लोगों में कुतूहल पैदा करता है। गांव के लिए अपना सब कुछ त्याग देने पर भी लोग उनकी कद्र नहीं करते। 'नेता से' शीर्षक निबंधानुसार भूले-भटके गुमराहों को ~~चुपतक~~ चुपचाप अपने पीछे ले चलनेवाले नेता कहलाते हैं। नेताओं के कंधों पर दुनिया भर की चिंताओं और योजनाओं का भार रहता है। वे अपने आदर्शों को तोड़ना नहीं चाहते बल्कि उसे पवित्र और स्वच्छ चाहते हैं। वे अपने विचारों का पांडित्यपूर्ण प्रचार करते हैं और एक ऐसी नवसंस्कृति का और जीवन ~~कर~~ जीने की कला का प्रदर्शन करते हैं ~~और~~

~~स्वच्छ चाहते हैं वे अपने विचारों का पांडित्यपूर्ण प्रचार करते हैं और एक ऐसी नवसंस्कृति का और जीवन जीने की कला का प्रदर्शन करते हैं~~ जिसका जनता को पता भी नहीं चलता । `शिक्षक से` शीर्षक निबंधानुसार आरण्यक युग में गुरु महाकृपण होते थे । अपने यत्किंचित ज्ञान को वे बहुत सम्भाल सम्भालकर खर्च करते थे । शिक्षण शालाओं में आजकी भांति उस युग में `त्रैराशिक` का प्रयोग नहीं किया जाता था । आज शिक्षक का कार्य शिक्षार्थी को मात्र शिक्षा देना है उसके जीवन और चारित्र्य से उसे कुछ लेना देना नहीं है। शिक्षार्थी से` शीर्षक निबंधानुसार आज छात्र-संस्कृति का असीम विकास हुआ है । प्राचीन काल में दोनों, तीनों समय आचार्य की नियमित पादसेवा होती थी। गौओं की वे टहल करते थे, खेत गोडते और धान भी उन्हें कूटना पडता था । द्वार पर भिक्षा पात्र लेकर वे रोज घूमते थे जबकि आज के छात्रों की दिनचर्या गौरवशालिनी है । `विज्ञानी से` शीर्षक निबंधानुसार जिस भौतिक ज्ञान के प्रति पुराने सत्यशोधकों ने आलस्य और उपेक्षा का भाव प्रदर्शित किया था, उसी को आज के युग में बुद्धिवर्द्धक विज्ञान की सुंदर संज्ञा दी गई। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि किसी को भी विज्ञान की अवज्ञा करने का साहस नहीं हुआ । आज के यंत्र युग में तृष्णा तथा उत्पादन वृद्धि को अधिक प्रोत्साहन मिला है। ज्ञान के चरम विकास का यही तो सबसे बड़ा प्रमाण है ।

`युवक से` शीर्षक निबंध में जैसे कवि है, कलाकार है, सैनिक है, नेता है वैसे ही युवक का भी एक सुव्यवस्थित स्थान है । यौवन का अस्तित्व सनातन काल से चला आ रहा है । यौवन विनय से झुकता नहीं और विनय में तारुण्य को झुका देने की शक्ति भी नहीं होती । यौवनकाल में युवान कवि जगत नयी पुरानी उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग करते हैं । कई पूर्वकालीन युवकों ने पथभ्रष्ट होकर अपनी यौवन सम्पत्ति को कठोर तपस्या की अग्नि में फेंक दिया । `वृद्धों से` शीर्षक निबंधानुसार मानवी वृद्धावस्था में आकर दुनिया के सत्यों को सही ढंग से देख सकता है। वृद्धत्व प्रतिक्षण कलियुग को कोसता है, उनको सलाह देना अक्सर बिना चाहे

बहुत पसंद होती है । हर युवक और बालक को वह शंका की ~~नर~~ नजर से देखते हैं। उनको वे (वृद्धों) अपने जैसे ही समझदार प्रशांत और गंभीर देखना चाहते हैं । 'तर्कवादी' शीर्षक अनुसार वे सत्य और असत्य के बीच कोई फर्क नहीं करते । तर्कवादी ~~अ~~ अपवाद से भी अपवाद को खोज निकालते हैं। श्रद्धा के फेरे में पड़कर लोग जहां आतर्क्य वस्तुओं के भयंकर बहाव में जा रहे थे, वहां तुमने उन्हें वस्तुदर्शन की विविध दृष्टियां देकर स्वस्थ, शान्तिया जड़ बन जाने से बचा लिया है। जगत इस महान उपकार के लिए तुम्हारा सदाकृतज्ञ रहेगा ।

शांतिप्रिय द्विवेदी :

श्री शांतिप्रय द्विवेदी लिखित 'चित्र और चिन्तन' निबंध संकलन उपन्यास न होते हुए भी निबंधों के रूप में पुस्तक का क्रमविन्यास उपन्यास जैसा है । इसमें व्यक्ति, उसका परिवेश, उसका युग और उसका रचनात्मक चिंतन है। यहां पर लेखक का अंतरंग कमल है ।

'भूख और हूक'[44] शीर्षक निबंधानुसार कमल ने जब पृथ्वी पर जन्म लिया था, तब चारों ओर हरियाली ही हरियाली थी। पृथ्वी शस्य श्यामला और सजला, ~~सुफला~~ सुफला थी। कमल को समाज से चाहे कुछ नहीं मिला, किन्तु प्रकृति से जल, प्रकाश, मिट्टी और हवाओं के वात्सल्य की तरह मिलती रही। प्रकृति अब भी शेष थी-किन्तु वह उस गाय की तरह बन्दिनी ~~भ~~ हो गयी थी, जिसका बाछा भूखा प्यासा रह जाता है। समाज नहीं, परिवार नहीं, प्राणीत्व नहीं, संसार केवल बाजार बन गया है। आज तो प्रकृति के दिए हुए वरदान अन्न, जल, फल, फूल, दूध, दही आदि भी बाजार में बिकते हैं। कलाकार कमल की समस्या केवल पेट भरने या जीभ चटकारने की नहीं-वह सुचिता और रुचिकरता भी चाहता है । इसीलिए उसकी खाद्य समस्या भी सांस्कृतिक समस्या है। भोजन में भी संस्कृति और स्वास्थ्य का सौष्ठव पाने के लिये कमल इधर-उधर भटकता है। अपने मन का वातावरण न मिलने पर भी नियमित भोजन

से कमल के पैरों की पीड़ा तो मिट गयी किन्तु हृदय की हूक नहीं गयी। `काफी हाउस की बातचीत`[४५] शीर्षक निबंधानुसार कमल तो प्रकृति से ही स्वास्थ्य ग्रहण करता रहता है। विदेशों में जहां सब के लिए घरेलू और पारिवारिक जीवन की सुविधा नहीं है, वहां बड़े लोग होटलों में और छोटे लोग रेस्टोरेन्टों और काफी हाउसों में अपनी क्षुधा शांति करते हैं। केवल व्यवहार में ही नहीं, खानपान में भी भारत अहिंसा का विवेक रखता है। एक यथार्थवादी चित्रकार के अनुसार सौन्दर्य स्वयं हिंसक है। सुंदरियां मृगनयनि ही नहीं, खज्जन नयन भी होती हैं। आसक्ति पशुओं में भी होती है। मनुष्य की आसक्ति में जीवमात्र के लिए अपनी ही वेदना जैसी संवेदना होती है यही उसकी संस्कृति है। कमल के अनुसार (निबंधकार) नग्नता को ढंकने के लिए ही नहीं, कभी-कभी देह की हिफाजत के लिए कपड़े बने, फिर कपड़ों में तरह-तरह के फैशन चले।

`व्यवधान`[४६] शीर्षक निबंध में कलाकार जैसे अपनी कला से, कवि जैसे अपनी कविता से एकाकार हो जाता है वैसे कमल उस कमलिनी के से एक प्राण हो जाना चाहता है। कलियों की विवशता और समाज की निष्ठुरता के कारण दुनिया में वह अकेला पड़ गया। भोजनालयों और होटलों में जैसे रोटी बिकती है वैसे ही वेश्यालयों में सेक्स बिकता है। ये दोनों बाजारू हैं। वेश्यालयों में सभी कन्याएं विलासिनी नहीं होतीं-झंझावात ने जिन कुछ कन्याओं को दुनिया के एक किनारे फेंक दिया, उनका सहज स्वभाव काल की कुटिलता में अक्षुण्ण रह गया। कमल अनुभव करता है एक ही श्रेणी के होते हुए भी वह और वे कन्याएं एक दूसरे से कितने दूर हैं जैसे कृत्रिम सीमाएं। `विडम्बना`[४७] शीर्षक निबंध में गन्दकी में एक किशोरी बालिका पानी लेने के लिए खड़ी है। किसी सीधी सादी कविता सी उसकी सरलता देखकर कवि हृदय कमल उससे आत्मीयता का अनुभव करने लगता है। जीवन इतना कृत्रिम हो गया है कि सुविधा के लिए सब नल से ही काम चलाते हैं। कभी-कभी मशीन ऐसी ठप्प हो जाती है कि सारे शहर में जल का अकाल हो जाता है।

लोग कुंओं और गंगा की ओर जाने लगते हैं। कमल के अनुसार कुमुदिनी आश्रम-वासिनी शकुन्तला का स्मरण दिलाती है ।

`अन्तर्मिलन`[48] निबंधानुसार ऐसी ही न जाने कितनी कुसुम बालिकाएं प्रकृति के प्रांगण में क्षणभर के लिए खिलती हैं। अगर कमल का वश चलता तो वह इन कलिकाओं को खिलते ही म्लान नहीं हो जाने देता । सच तो यही है कि जिन के दूध के दांत नहीं टूटे वे एरलाएं किसी एक देश की नहीं, सभी देशों की एक ही पृथ्वी की कन्याएं हैं । `निर्लिप्त`[49] शीर्षक निबंधानुसार कमल जिस सूनेपन से बाहर निकलता है फिर उसी सूनेपन में लौट आता है । जहां मन से मन नहीं मिलता- वहीं मनुष्य अकेला पड़ जाता है । संस्कृति और कला के अभाव में मनुष्य चैतन्य प्राणी नहीं बन सकता । तुलसीदास जी ने राम के लिये जिन पारिवारिक और सामाजिक सम्बंधों को छोड़ देने के लिए कहा- था उन्हीं सम्बंधों को सत्-चित् आनन्द से जोडने के लिए राम ने स्वार्थ त्याग किया था । उनके त्याग में वैराग्य नहीं, अनुराग था । आज जो पारिवारिक और सामाजिक सम्बंध टूट रहे हैं वे केवल टूटने के लिए टूट रहे हैं, प्रेम से जुडने के लिए नहीं। आज व्यक्ति का पशुत्व ही सब कुछ हो गया है। अपने अपने स्वार्थों से लिपटे हुए लोग आत्म त्याग तो नहीं कर सकते किन्तु जीवन से ऊबकर आत्महत्या कर लेते हैं । सृष्टि अकेलापन लेकर नहीं चल सकती । सृष्टि में पुरुष आया तो नारी भी आयी। यहि सहअस्तित्व का श्रीगणेश है । `तीर्थस्मृति`[50] शीर्षक निबंध में शिवलिंग की पूजा का चाहे जो सुफल हो, मनौती में चढाये पकवानों और मिठाईयों से रसना को रस का आनन्द तुरंत मिल जाता है । विवाह के पहिले कुमारी कन्याओं जिनका हृदय अबोध, उनमें न भविष्य की कल्पना है न कामना सिर्फ मौन कुतूहल है वे मूर्ति का पूजन करती है। इस तरह सृष्टि के कोटि-कोटि प्राणियों में सबका संवेदनशील अंतर्यामी ही तो देवता है। वे सब अगर स्नेह और सहयोग से एक-दूसरे को सुखी न कर

सके तो किसी अन्य देवता की क्या आवश्यकता । `पश्चाताप`[५१] शीर्षक निबंध- में सांस्कृतिकता के दर्शन होते हैं । कमल का जन्म सांस्कृतिक कुल में हुआ था । माँ गृहसाधिका भारतीय नारी उसके पिता गृहत्यागी सन्यासी, बहिन तपस्विनी बाल-विधवा, आर्यनारी की वही प्रतिमूर्ति है । बहिन अपने भाई को पाल-पोषकर बड़ा करती है, जीवन, साहित्य बहिन के पुण्य चरणों का प्रासाद है । निबंधकार सन् १६३६ में प्रयाग से काशी आये, बहिन प्रयाग से देहात चली गयी, वहां वह कुछ अस्वस्थ हो गयी थी । उनका सानिध्य पाने के लिए लेखक जब उसे काशी ले आते हैं वही मरणासन्न हो जाती है । बहिन की दृष्टि सांस्कृतिक ही नहीं-सौन्दर्य शालिनी भी थी। अंतिम क्षणों में उसके मुंह में गंगाजल की एक बूंद लेखक नहीं डाल सके, वही उनके जीवन का पश्चाताप रह गया । `विद्रूप`[५२] शीर्षक निबंधानुसार हृदय के खिलने के लिए स्नेह सिंचन चाहिए। उसके बिना खाद-पानी से शरीर भी नहीं पनप सकता । कमल कला के क्षेत्र में यही विश्वास लेकर चला आ रहा था कि मनुष्य सर्वत्र प्राकृत प्राणी है । आत्मलिप्सु पशु है। वह लोकपथ पर सांस्कृतिक दृष्टि से तो उत्कृष्ट एवं कुंठित है ही। शारीरिक दृष्टि से भी अतृप्त और कुंठित है ।

`व्यक्ति और युग`[५३] शीर्षक निबंध में प्रथम महायुद्ध के बाद सन् १६१६ में हमारे देश में गांधीयुग आ गया था । खद्दर उसी का रचनात्मक प्रतीक था । यज्ञोपवीत जिस संस्कृति का मंत्रसूत्र है- खद्दर उसी संस्कृति का अर्थसूत्र । १८५७ के बाद अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों ने ही अंग्रेजी शासन के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह किया । क्रांतिकारियों और गांधी युग की राष्ट्रीयता में उतना ही अंतर था जितना हिंसा और अहिंसा में। गांधी युग प्रकृति की सजीवता के अनुरूप ही कृषि और ग्रामोद्योगों के द्वारा पुरुषार्थ की साधना कर रहा था । `शेष चिन्ह`[५४] शीर्षक निबंधानुसार दूसरे महायुद्ध के बाद संसार दो शिविरों में बंट गया था । राजनीतिक दृष्टि से अब काश्मीर का महत्व है । `खादी एक सार्वभौम समस्या` शीर्षक निबंध में असहयोग आंदोलन के दिनों

में विदेशी कपड़ों की होली जलायी गयी थी। स्वराज्य से गांधी जी का मतलब था गांवों का आर्थिक स्वावलम्बन। 'खादी एक नैसर्गिक साधना'[55] शीर्षक निबंधानुसार बुनियादी दृष्टि से स्वदेशी अर्थात् मानवीय स्वावलंबन। विदेशी अर्थात यांत्रिक स्वावलंबन। खादी उस सीधे-सादे ग्रामीण कृषि युग की गृह साधना है जिस युग में मनुष्य अन्न जल की तरह वस्त्र के लिए भी प्रकृति से समरस होकर पुरुषार्थ करता था। 'लक्ष्मी की प्रतिष्ठापना'[56] शीर्षक निबंध में दीपावली समस्त लोकों की लक्ष्मी की आरती है। उसका वरदान सभी को मिले यही उसकी धार्मिक विशेषता है। लक्ष्मी वह ग्राम्य सम्पदा है जो अपनी सजीव सुषमा में सुलक्षणा गृहदेवी और अपनी माया ममता में माता अन्नपूर्णा हो जाती है। हमें अपने देश में इसी लक्ष्मी को प्रतिष्ठापित करना है। 'युग और जीवन'[57] शीर्षक निबंधानुसार आधुनिक काल का विशेष संपर्क नगरों से है। औद्योगिक क्रांति के मूल में सामाजिक साधना नहीं थी केवल वैयक्तिक सुख सुविधा की प्रेरणा थी। कभी आदिम युग में मनुष्य जंगली पशु था अब चारों ओर की बर्बरता को देखकर जान पड़ता है कि इतने युगों बाद भी वह पशु है।

आचार्य ललिताप्रसाद शुक्ल

आचार्य ललिताप्रसाद 'शुक्ल' लिखित निबंध संकलन 'इनसे' एक वैयक्तिक प्रकार का संकलन है। समय समय पर लिखे गए अठारह निबंधों का यह छोटासा संग्रह है। इनमें से अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हो चुके हैं। इस संग्रह के प्रत्येक निबंध में जो कुछ कहा गया है वह कुछ प्रमुख व्यक्तियों से अथवा व्यक्ति समूह से ही कहा गया है। अगर हम निबंधकार के ही शब्दों में कहें तो जब जो कुछ कहा गया वह किन्हीं महत्वपूर्ण प्रश्नों अथवा समस्याओं के सम्बंध में भुकाव के ही रूप में अपनों के बीच कहा गया है। व्यावहारिक नीति का सिद्धान्त यह है कि एक ही पथ के पथिकों के बीच स्पष्टता का ही व्यवहार होना चाहिये। आपस में औपचारिक दुराव बहुत हितकर सिद्ध नहीं होता। इसी भावना से प्रस्तुत निबंधों में भी जो कुछ

निवेदन किया गया है वह स्पष्ट अवश्य है, कटु नहीं ।

'जाहि कहाँ हित आपना सोई बैरी होय'[५८] शीर्षक निबंधानुसार शांति और निर्माण के सात्विक क्षणों में तर्क और उत्साह प्रबल रहते हैं। हिन्दी भाषा और उसकी बोलियों को लेकर आजकल कुछ भाषाविदों के मन में जो व्यर्थ की उलझनें देख पड़ती हैं वे इसका एक नमूना है । इस सामयिक और अकारण विप्लव के कर्णधारों में ऐसे मनीषी विद्वानों की भी कमी नहीं दीख पड़ती जिन्हें 'भाषा' और बोली में क्या अन्तर है, तथा इनका क या पारस्परिक सम्बंध है इसका भी ज्ञान नहीं । सिद्धान्तत: इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि भाषा अधिक व्यापक संज्ञा है जिससे समान रूपवाली विविध बोलियों के सामूह का बोध होता है । युगों युगों की पारस्पारिक घनिष्ठता ने इनमें एक स्वाभाविक सामंजस्य भी स्थापित कर दिया है। जिससे हिन्दी भाषा के विस्तृत क्षेत्र के निवासी अपनी-अपनी बोलियां बोलते हुए भी एक ही भाषा-कुटुम्ब के अंग बन चले आ रहे हैं । प्राय: सभी ईमानदार तथा दूरदर्शी राष्ट्रप्रेमी युगों से कहते चले आये हैं कि राष्ट्रीय संगठन के लिए हम भारतवासियों को भी अन्य अंचलीय भाषा के अतिरिक्त एक अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा अपनानी ही होगी। साहित्य का बोली के लिये महत्व होते हुए भी अनुभव यही बताता है कि कोई भी बोली अपने जीवन के लिये साहित्य की मोहताज नहीं । मंजते-मंजते साहित्यिक हिन्दी का यह रूप इतना अधिक निखरता चला जा- आ रहा है कि हिन्दी भाषा की अपनी विविध बोलियों की कौन कहे, शायद वह दिन भी दूर नहीं, जब देश की अन्य विविध भाषाओं को भी उसी में अपना प्रतिबिंब साफ दिखाई पड़ने लगेगा । संक्षेपत: देखें तो शिक्षा संस्कृति एवं सभ्यता की आवश्यकताओं के कारण भाषा क्षेत्र का यह प्रयोग एक अभि अनिवार्य क्रिया है। यह असंगत न होगा कि किसी भी स्थान विशेष की कोई बोली यदि किसी प्रकार स्वतंत्र सत्ता का रूप धारण कर भी ले और चाहे कि अपने साहित्य का सृजन करके पूर्ण स्वाधीन हो जाय, तो उसे भी अपना एक परिष्कृत रूप धारण

करना ही पड़ेगा और विशुद्ध एकरूपता का दावा व्यर्थ हो जायेगा । किसी बोली या भाषा की साहित्य सृष्टि किसी व्यक्ति या संस्था की इच्छा या अनिच्छा पर निर्भर नहीं हुआ करती, वरन् वह तो उसकी निजी योग्यता एवं सामयिक प्रेरणा के अनुसार ही हुआ करती है । उसकी विचार-वाहिनी शक्ति, सरलता और व्यापकता को देखना- इसलिये आवश्यक है कि किसी राष्ट्र के निर्माण उसके संगठन तथा संचालन में भाषा का बहुत बड़ा महत्व रहता है । तरह-तरह के जीवन व्यापारों का सम्पादन उसी के द्वारा होता है यदि माध्यम निर्बल होगा, तो काम ही कैसे चलेगा ?

'यश अपयश विधि हाथ' [५६] शीर्षक निबंधानुसार आज का हिन्दी संसार हिन्दुस्तानी भाषा के नाम से ही चिढ़ सा गया है। ज्यों- ज्यों महात्मा गान्धी तथा उनके हिन्दुस्तानी संघवाले इस शब्द को लोकप्रिय बनाने का प्रयत्न करते हैं, त्यों-त्यों हिन्दी के भक्त और उपासक इस शब्द को अधिक घृणास्पद एवं त्याज्य समझते जाते हैं। अरबों के बाद ईरान और तुर्क देश के निवासियों का सम्बंध इतिहास सिद्ध घटना है । यह नवीन संपर्क सांस्कृतिकया व्यावहारिक क्षेत्र में भले ही नवीन ~~रू~~ रहा हो, लेकिन भाषा तत्व वेत्ता यह जानता है कि फारसी आर्य-भाषा की शाखा होने के नाते अपनी बड़ी बहन संस्कृत से बहुत प्राचीन काल से सम्बंद्ध है । हिन्दी का वैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया में डा० ग्रियसन ने उत्तरीभारत की हिन्दी भाषा बोलियों तथा नाम की आलोचना करते हुए पग-पग पर हिन्दी के साथ 'हिन्दुस्तानी' नाम का जिक्र किया । इसी सिलसिले में उन्होंने माना कि हिन्दुस्तानी में उर्दूपन का होना अनिवार्य है । अतः स्पष्ट है कि सैकड़ों वर्षों तक प्रसारित क्या मध्य और आधुनिक कालतक हिन्दी अपनी स्वाभाविक गति से आगे बढ़ती हुई हिन्दी या हिन्दुस्तानी दोनों ही नामों से विभूषित थी। इसमें भेद न था हिन्दू का न मुसलमान का । सत्य के पुजारी गांधी जी

इस प्रस्ताव के प्रबल समर्थकों में थे। पार्थक्य की इस नयी मांग ने संकीर्णता की, सांप्रदायिकता की एक नवीन अराष्ट्रीय भावना को जन्म जरूर दे दिया। 'ये केहि काज दाहिने बायें'[६०] शीर्षक निबंधानुसार अंग्रेजी के वे अखबार जो भारतीय भाषा और साहित्य के नाम से ही नाक-भौं चढ़ाया करते थे। आज के राष्ट्र के द्वारा स्वीकृत हिन्दी के विरोध में कलमें घिस रहे हैं। एंडी-चोटी का पसीना एक किए दे रहे हैं। एक बहुत बड़े विचारक के मतानुसार यदि किसी के व्यक्तित्व का बड़ापन तौलना हो तो उनके विरोधियों की संख्याओं को गिन लो। जो महान होते हैं, जिनका अस्तित्व अपनी विशेषता रखता है, उन्हीं का ~~विशेष~~ विरोध भी अधिक रहता है। हमें जरा देखना चाहिये कि विरोध करने वाले हैं कौन? इस कोटि के व्यक्ति देश की स्वतंत्रता को समझने में ही असमर्थ हैं। गुलामी का एक नैसर्गिक गुण बुजदिली भी तो हुआ करता है। उसी के मारे बेचारे आज खुलकर कहने का साहस तो नहीं करते कि हम अंग्रेजी राज्य में ही रहना चाहते हैं। लेकिन येनकेन प्रकारेण दोहाई देकर उसी की 'खैराफियत' मनाया करते हैं और पानी पी-पीकर हिन्दी को कोसा करते हैं। दूसरा दल कुछ उम्र के हिसाब से है जिसका मूल उसके (मनुष्य) स्वभाव में ही है। इसमें वे लोग आते हैं जिनकी अवस्था ~~पचस~~ पचीस और तीस को पार कर चुकी है। कुछ भी नया सीखना, वह कितना ही उपयोगी क्यों ~~नहीं~~ न हो, उनके बस से बाहर होता है और बरबस बेचारों को हिन्दी का विरोध करना पड़ता है। तीसरा दल इन दोनों के गुणों से विभूषित तो है ही, वरन् इसके अतिरिक्त भी अपनी अनेक विशेषताएं धारण किए हुए है। यों तो इस दल की प्रेरणा के स्रोत अनेक हैं लेकिन सर्वप्रधान है उसकी स्वार्थ साधना। अपनी धाक और लगी हुई अगणित पूंजी का मोह इसे पग-पग पर बाध्य करता है कि यह राज्य एवं राष्ट्रभाषा हिंदी का विरोध करें। 'दिल ये कहता है जरा और तमाशा देखें'[६१] शीर्षक निबंधानुसार बापू इस अभागे देश के लिए, आज की गिरी हुई मानवता के लिये, क्या-क्या कर गये। इसकी नापतौल आज संभव नहीं। देश का विभाजन उनके लिये एक क्षणिक विडम्बना से अधिक कुछ था ही नहीं। इस अप्राकृतिक एवं अमानुषिक विभेद को मिटा देना ही उनकी

चिर अभिलाषा थी । न केवल स्वाधीनता प्राप्त करने के पहले, वरन् पन्द्रह अगस्त १९४७ के बाद २३ सितम्बर १९४७ को ही भारत की राजधानी दिल्ली में ही बैठकर उन्होंने नि:संकोच कहा था कि वे तो भारत के गवर्नर जनरल को उस छोटी सी कुटिया में निवास करते देखना चाहते हैं जिसमें भारत का अतीत-गौरव और पुरुषार्थ - योगेश्वरों और मुनीश्वरों के रूप में अनादिकाल से निवास करने का अभ्यासी रहा है। न केवल गवर्नर जनरल के लिये वरन् देश के मन्त्रीमंडल एवं शासक वर्ग के लिये भी इच्छा-जन्य उनका आदेश था कि उनका रहन-सहन उनका साजो-सामान सब कुछ उन्हीं आदर्शों के अनुकूल होना चाहिये । जहां तक राष्ट्रभाषा का प्रश्न है यह सत्य है कि गांधी जी आज की इस बदनाम हिन्दुस्तानी को भी बर्दाश्त करने के लिए तैयार थे । वे खण्डित भारत को एक बार फिर जोड देने में समर्थ होना चाहते थे ।

`देखकर तस्वीरे यूसुफ कह दिया कुछ भी नहीं`[62] शीर्षक निबंधानुसार पिछले लगभग पचहत्तर वर्षों में पेशा-लीडरी के एक नहीं अनेक रास्ते खुल गये हैं। लेकिन इन पेशेवर लीडरों ने तुरन्त देख लिया कि इस स्तर पर बहुत दिनों तक नहीं टिका जा सकता । उनको इसी में ~~ब~~ कल्याण देख पड़ा कि इसे छोड़कर इसी स्तर के कुछ और कोने झांकें। आधुनिक युग `यांत्रिक युग` कहलाता है । इसकी सार्थकता और निरर्थकता पर विचार किया गया है । यांत्रिक दुनिया की परम्परा कुछ ऐसी है कि वह स्वभाव से व्यवसायनिष्ठ होती है । मुद्रण यंत्र में भी आज के दस वर्ष पहले के ढंग में और आज के प्रचलित रूप में मौलिक परिवर्तन हो चुके हैं। आज के तथाकथित लिपि विशेषज्ञों को यह भी जान लेना चाहिए कि आज की प्रगतिशील संसार की मुद्रण व्यवस्था हैण्डकम्पोजिंग तक ही सीमित नहीं रही, वरन् पाश्चात्य में तो `मोनोटाईप` और `लाइनोटाइप` का युग भी आकर चला गया। हमारे देश में ही आज एक नहीं अनेक इस दिशा में सफल प्रयोग हो चुके हैं। `ठगों का बैठका है जाबजा चोरों की महफिल है`[63] शीर्षक निबंधानुसार चहल-पहल जीवन की निशानी है और स्तब्धता शायद मरण की।

साहित्य सम्मेलन के शुद्धीकरण की मांग आज की चहल-पहल की पहली तरंग है। सैकड़ों क्या हजारों संस्थायें यदि हिन्दी की सेवा में रत हो जायें तो उनका स्वागत है। किसी भी सभ्य देश के साहित्य के विविध अंगों की पूर्ति मुख्यांश में या तो सरकारी तौर पर कराई जाती है, ~~र~~ या फिर उन मेधावी विद्याव्यसनी व्यक्तियों के द्वारा होती है। कटु वास्तविकताओं को सामने रखते हुए यह निवेदन बुरा न होगा कि हिंदी के ये शुभचिंतक यदि हिन्दी की वास्तविक सेवा करना चाहते हैं तो पंचवर्षीय या दसवर्षीय योजना के स्वप्नों को देखने से पहले हिन्दी के उन्नति पथ की वास्तविक अड़चनों को दूर करने की ईमानदारी से चेष्टा करें। 'तुम्हीं ने दर्द दिया अब-तुम्हीं दवा दोगे'[६४] शीर्षक निबंधानुसार उदयपुर अधिवेशन का समय ज्यों-ज्यों निकट आता जाता है लोग अपनी-अपनी तजवीजें लेकर उपस्थित होते जाते हैं। सम्मेलन के कायाकल्प के कुछ नुस्खे पंडित ~~जी~~ बनारसीदास जी चतुर्वेदी ने भी उस दिन पेश किए हैं। उनकी राय में दस वर्ष का इलाज सम्मेलन को फिर से नयी जवानी दे सकेगा - वैधानिकता का सरजाम जोर पकड़ता जा रहा है। इसका इलाज वे इस तरह करना चाहते हैं कि विधानों को स्थगित कर दिया जाय और सम्मेलन की सारी सत्ता चतुर्वेदी जी द्वारा अन्वेषित अठारह भिषारत्नों को सौंप दी जाय। व्यक्तिगत योग्यता अथवा अयोग्यता का प प्रश्न उठाना शिष्टता के अनुकूल न होगा। आत्मवंचना केवल सामाजिक तथा नैतिक दुष्कर्म ही नहीं वरन् एक पाप है। एक सम्मेलन ही ~~क~~ या कितनी ही भारी संस्थायें व्यक्तिगत स्वार्थ साधन की सीढ़ियां बनी हुई हैं। पहली आवश्यकता है हम 'डिक्टेटरी' और 'लीडरी' के शौक से अपने को मुक्त करें, अधिक ईमानदारी से काम करें।

'ग़जल कहते हैं उस लम्हे को जब दिल को करार आए'[६५] शीर्षक निबंधानुसार उस समय यही हिन्दी राष्ट्र की वाणी होगी। भारत अपना सन्देश केवल भारतीयों को ही नहीं, ~~इसने~~ वरन् शायद विश्व को भी अपनी इसी वाणी में देगा। उस समय की आवश्यकताएं भिन्न थीं और उन क्षणों में राष्ट्रभाषा का व्यापक प्रसार ~~समय~~ समय की

माँग थी। अपनी अन्य असाधारण विशेषताओं में बापू की सबसे बड़ी विशेषता और सिद्धि की कुंजी यह थी कि वे अपनी सब योजनाओं को व्यावहारिक रूप भी देना जानते थे। भारत आज स्वतंत्र देश है। ज्ञान गुरुता का दावा उसका अति प्राचीन रहा है हमें न भूलना होगा कि आज हमारी होड़ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अन्तर्प्रांतीय नहीं है वरन् अन्तर्राष्ट्रीय है। मैखानाएं योरोप के कुछ ढंग निराले हैं जाते हैं सुरूर उन्वल देते हैं शराब आखिर`[६६] शीर्षक निबंधानुसार सदियों का यह गुलाम भारत न जाने किस पुण्य के कारण अभी उस दिन फिर एक बार उन्मुक्त वातावरण में सांस ले सका। स्वाधीनता समीर की मादकता सहज और वर्णनातीत होती ही है। यहां पर राष्ट्रभाषा पर विचार किया गया है जिसका आलेखन हम पहिले कर चुके हैं।

ये हैं इस कदर मुहज्जब, कभी `मा` का मुंह न देखा`[६७] शीर्षक निबंधानुसार न केवल दार्शनिक सिद्धान्तों का निदर्शन ही, वरन् सामाजिक जीवन की जटिल से जटिल समस्याओं का हल भी भारतीय प्रतिभा की ही देन है। गंभीरत तत्वों की गंभीर गवेषणा` मानव चिन्ता` की उच्च साधना कहलाती है। घोर परिवर्तनों के इस युग में भी एक साधारण भारतीय अपनी सभ्यता की उस दृढ़ नींव पर खड़ा है जिसको युगों की आंधी और बवण्डर भी न डिगा सके। नीरक्षीर विवेक विद्वता का परम आभूषण है और पूर्वजों की अर्जित विद्वता तथा कीर्ति का अनाधिकार उपभोग अकर्मण्यता की घृणित सीमा भी। हमारे दुर्भाग्य एवं अंधकार के लगभग छह सौ ६०० वर्षों के लम्बे चौड़े युग ने हमें कितना अधिक बदल डाला है कि हम अपने आपको भी भूल गये हैं। `तुम न अच्छा कर सके, यह भी बहुत अच्छा हुआ`[६८] शीर्षक निबंधानुसार प्रतियोगिता प्रधान आज के इस युग में जीवित रहने की अभिलाषिणी कोई जाति अपने साहित्य की गतिविधि की ओर से आंखें नहीं बन्द रख सकती। कहावत के अनुसार `लक्ष्मी और सरस्वती में सनातन बैर है`, आए दिन लेखकों की दयनीय दशा पर आंसू बहाने का-~~स्वस~~ स्वांग देखा जाता है। लेकिन आश्चर्य तो यह है कि यह ढोंग

भी रखा जाता है । कुछ ऐसे व्यक्तियों के द्वारा - जो अपना परिचय लेखक कहकर देते हैं। स्वार्थान्ध, अर्थलोलुप व्यवसायियों को यदि छोड़ भी दें तो देखा जाता है कि साहित्य सेवियों का निरादर, उनका अपमान तथा उनकी कठिनाइयां प्राय: बढाई गई हैं उनके द्वारा जो स्वयं लेखक थे और हैं । इसका उदाहरण देकर समझाया है । प्रकाशकों एवं सम्पादकों पर कलाकार एवं लेखकों का दायित्व कदापि न होता यदि वे उनकी लेखनी, उनकी कला केवल व्यवसाय करके धनी बनने की अभिलाषा न रखते । कला का प्रकाशन भी यदि उसी सात्विकता की भावना से तथा निस्वार्थवृत्ति से किया जाता- तब तो यह संसार शायद स्वर्ग बन जाता । `मेरी सादगी देख क्या चाहता हूं`[६६] शीर्षक निबंधानुसार `मानसिक योगदान` को ही तो साहित्य कहते हैं । इसकी सीमा इतनी व्यापक तथा विस्तृत है कि उससे बिलकुल अछूता रह जाना किसी के लिये संभव नहीं। आधुनिक युग में भी लाखों के दान देनेवाले यहां पाये जाते हैं । परन्तु साहित्यिक रुचि का उनके जीवन में भी प्राय: अभाव सा ही देख पड़ता है। जीवन में साहित्य के प्रति उदासीनता का ही परिणाम है कि धीरे- धीरे मानसिक गुलामी की कड़ियां अधिक दृढ़ होती जाती हैं ।

फिर खयाल आया के भूसा बेवतन से हो जायगा`[७०] शीर्षक निबंधानुसार साहित्य के प्रचार में ` या भाषा के प्रचार में। सभी यह जानते हैं कि राष्ट्रीय आन्दोलन के कारण राष्ट्रभाषा प्रचार की समस्या उग्रतर हो उठी थी । सम्मेलन को छोड़कर शायद कोई दूसरी संस्था इस ओर अग्रसर होने के लिए तैयार नहीं थी। और उसे बरबस यह काम अपने सर पर लेना पड़ा। जिसका निर्वाह भी उसने खूब किया । संयुक्त प्रान्त की जनता अपने घरों में प्रतिदिन के व्यवहार में हिन्दी या हिन्दुस्तानी के साहित्यिक रूप का नहीं, वरन् हिन्दी के विविध बोलियों का यानी `अवधी , बैसवाड़ी और ब्रज आदि का व्यवहार करती है । `आदाव` या अलफाज` से लदी यह भाषा यदि कहीं चलती है तो केवल लखनऊ या प्रयाग के बनावटी शिष्ट समाज के

'ड्राइंग रूमों' में या अपने विकृत रूपों में देहाती रईस और जमींदारों की बैठक में। यहां पर बाबू हरिश्चन्द्र और मुंशी प्रेमचंद की भाषा की ओर इशारा किया गया है। और बिना दलील या प्रमाण मान लिया गया है कि जैसे इनकी भाषा के प्रति उर्दू सेवकों की कोई शिकायत है ही नहीं। या हो ही नहीं सकती। 'इनको खुदा कहूं के खुदा को खुदा कहूं'[71] शीर्षक निबंधानुसार प्रश्नोत्तर के रूप में चर्चा की गई है। आलोचना, समालोचना पर विचार प्रदर्शित किए गए हैं।

'आके बैठे भी न थे और निकाले भी गए'[72] शीर्षक निबंधानुसार सुधारों के इस युग में आए दिन हिन्दी साहित्य के विविध अंग भी कसौटी पर कसे जाते हैं, और देखने की चेष्टा की जाती है कि वहां सुधारों की कितनी गुंजाइश हो सकती है। ऐसे प्रयासों में यदि सात्विक भावना की प्रेरणा हो तो उसे स्तुत्य ही कहना पड़ेगा। लेकिन कितने प्रयास सच्ची लगन को लेकर किए जाते हैं यह एक प्रश्न है। किसी की नियत पर बिना कारण सन्देह करना अनुचित अवश्य है परन्तु यथार्थ कारणों के होते हुए ऐसा सोचना अनुचित नहीं है। क्योंकि किसी की अनधिकार चेष्टा का विरोध करना भी आवश्यक कर्तव्य है। साहित्य का आसन ऊंचा आसन है। साहित्य का अनुशीलन तथा उसकी परख भी इतनी सरल नहीं। जिस प्रकार संसार के अन्य आवश्यक ज्ञानक्षेत्र
की उपासना करते हैं उसी प्रकार हिन्दी साहित्य का अध्ययन भी अध्ययन करनेवालों
विविध योग्यताओं में कुछ विशेष योग्यताओं की अपेक्षा अवश्य करता है। संसार के किसी भी साहित्य की धारा सदा एक रूप में नहीं बहती। उसका रूप निरन्तर परिवर्तित होता रहता है। साहित्य मानव भावनाओं तथा अनुभूतियों का आधार है और है कला की चिर साधना। उसका मनन और परिशीलन हृदय की सरसता, अनुभूतियों की शुद्धता तथा कोमलता पर निर्भर रहता है। संसार के सभी पदार्थ सबके लिये नहीं बने हैं मनुष्य को अपने अनुरूप ही कार्य चुनना चाहिए। 'मन इनका' पुराना पापी है बरसों में नमाजी न हो सका'[73] शीर्षक निबंध में आज का हमारा संसार अनेक रूपों में समुन्नत और प्रगतिशील होने का दावा करता है। क्रान्ति और उलट फेर के नारे चुनौतियों पर

चुनौतियां, ध्वंस और विध्वंस की कर्ण कटु आवाजें कान में कोने-कोने से गूंजती है। लेकिन निर्माण और सुव्यवस्था की सांस शायद ही कभी सुन पड़ती है। पढ़कर कुछ क्षणों के लिए ऐसा जान पड़ता है कि इस समय एक नहीं अनेक दुर्वासाओं की सृष्टि अनायास हो गयी है। निराशा और ग्लानि सच्चे साहित्यिक ~~सजन~~ की बाधा नहीं हो सकती। भले ही गुरु मत्स्येन्द्रनाथ क्षणिक माया में गुमराह होते दीख पड़े। शिष्य गोरख उन्हें जानने की चेष्टा तो करेगा ही।

शिवप्रसाद सिंह :

डा० शिवप्रसाद सिंह ने हिन्दी ललित निबंध लेखन की परम्परा में तीन निबंध संकलन कस्तूरी मृग, शिखरों का सेतु, और `चतुंदिक` देकर महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। शिवप्रसाद सिंह का पहला निबंध संग्रह है `शिखरों का सेतु` इस संग्रह में बाइस निबंधों को प्रस्तुत किया गया है। जिनमें से कुछ निबंध संस्मरणात्मक एवं कथा पद्धति में तो कुछ चित्रात्मक, रिपोर्ताज पद्धति में लिखे गए हैं। `पुष्प के अभाव में` शीर्षक के अंतर्गत निराला, चेखब, कामू जैसे राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय श्रेष्ठ व्यक्तियों के प्रति श्रद्धांजलि के रूप में संस्मरणात्मक और वैचारिक स्तर के ललित निबंध हैं। इसके बाद शिवप्रसाद सिंह को श्रेष्ठ निबंधकार के रूप में प्रतिष्ठित करनेवाला उनका दूसरा निबंध संग्रह है। `कस्तूरी मृग` इस संग्रह में उन्नीस निबंध संग्रह है। इसमें ~~इन~~ `व्यक्तिपरक` शीर्षक के अंतर्गत दिए गए सात निबंध संस्मरणात्मक पद्धति में होते हुए भी चरित लेख के अधिक निकट लगते हैं। जबकि अंतिम निबंध और `कस्तूरी मृग भटकता रहा` सर्वाधिक महत्वपूर्ण निबंध है। यह निबंध लेखक के सर्जक कलाकार के रूप को उभारने का तथा आत्मकथ्य प्रधान होने के कारण सच्चे अर्थों में ललित निबंध ~~म~~ कहा जा सकता है। `चतुंदिक` निबंध संग्रह श्री शिवप्रसाद जी का अंतिम संग्रह है। इसमें उनके उच्चकोटि के छब्बीस निबंध संग्रहीत हैं। इसके अतिरिक्त कुछ निबंध संस्कृत साहित्य से सम्बंधित भी हैं। यहां पर इस `चतुर्दिक` निबंध संग्रह पर दी गयी टिप्पणी -

डा० शिवप्रसाद जी के एक सशक्त ललित निबंधकार के स्वरूप को उभारने में पर्याप्त सहायक है। `भारतेन्दुकाल में लिखे गये- ललित निबंधों से लेकर आज तक दर्जनों निबंधकार हुए हैं और उन्होंने अपनी मंजुल कलाकारिता से इस क्षेत्र को बहुत समृद्ध किया। परन्तु साहित्य की यह सुरम्य सचमुच एक ~~और~~ ऐसे निबंधकार की प्रतीक्षा में थी जो उसे आदर्शवाद, रूमानियत की पिच्छलता और भाषा की रोशनी लच्छेदारी से उतारकर जिंदगी से कशमकश भरे धूसर क्षितिज पर ही नहीं धरती पर उतार दे। शिवप्रसाद सिंह ने ललित निबंधों को रोजमर्रा की जिंदगी से उतारकर उसमें एक नयी तरह की संघर्षभरी जीवन्तता ला दी है।`[७४]

इन्द्रनाथ मदान :

उनके द्वारा लिखे गए वैयक्तिक निबंधों में हमें एकदम दूसरा रूप मिलता है। `निबंध और निबंध` संकलन में प्रथम तेईस निबंध मदान द्वारा लिखित विशुद्ध वैयक्तिक निबंध है। जो उनके जीवन चरित्र, स्वभाव, चिंतन दृष्टियों, दु:खदर्दों और सम्मान असम्मान के क्षणों की प्रतिक्रियाएं हैं। यहां न तो चिंतन प्रधान है, न दर्शन और न विद्वता। वहां एक आत्मीय मित्र, एक आत्मीय स्वजन की खुली व्यंजनाएं हैं। जिनमें न दुराव है, न कृत्रिमता। स्वयं लेखक ने इन्हें व्यक्तिगत निबंधों की संज्ञा प्रदान की है। अनेक निबंध उनके जीवन घटनाओं एवं प्रमुख प्रसंगों का परिचय देते हैं, ऐसे निबंधों में आत्मकथा और आत्मचरित का रूप देखने को मिलता है।

जगदीशचन्द्र माथुर :

जगदीशचन्द्र माथुर ने चरित लेख लिखे हैं। उन्होंने स्वयं लिखा है कि मेरे ये लेख प्राय: सभी संस्मरण के से वातावरण से प्रारंभ होते हैं। यह चरित लेख ललित और गंभीर साहित्य का अंग है। संस्मरण उत्कृष्ट पत्रकारिता की एक वैयक्तिक और मनोरंजक विधा है। निबंधकार ने हिन्दी कवियों और लेखकों के विषय में न लिखकर समाज के

व्यापक अंगों में से कुछ ऐसे लोगों के चित्र लिखे हैं जिनका व्यक्तित्व अपने क्षेत्र में व्यापक रहा है। प्रोफेसर और मास्टर, कवि और संगीतज्ञ, अभिनेता और पुरातत्ववेत्ता, राजनीतिज्ञ और प्रकाशक इन सबकी जीवन कथाओं में समाज के विविध रूप प्रतिबिंबित हैं।

'जीवन निर्माता अध्यापक'[75] शीर्षक निबंधानुसार श्री अमरनाथ झा का व्यक्तित्व चित्रित किया गया है। वे अंग्रेजी साहित्य के अध्यापक और प्रयाग विश्व-विद्यालय के विख्यात उपकुलपति थे। शिष्यों के साथ झा साहब एक उदार हृदय दानी सेठ का सा व्यवहार नहीं करते थे बल्कि एक स्नेह सिक्त, करुणार्द्र हित-चिंतक, पिता का सा। पाबंदियों के वह कायल थे। जैसे कुम्हार चाक पर से एक के बाद एक बरतन उतारता जाता है। कुछ ऐसे ही झा साहब के हाथों भावी आई० सी० एस और अन्य प्रकारों के अफसरों का निर्माण होता रहा। 'मतवाला कलाकार'[76] शीर्षक निबंधानुसार शिशिरभादुड़ी बंगला रंगमंच के अद्वितीय अभिनेता और नाट्याचार्य थे। उनका चित्रण यहां पर किया गया है। चाणक्य की भूमिका में शिशिरभादुड़ी जब पहले पहल उतरे तो बंगला रंगमंच पर मानो गिरिश घोष के बाद पुनः भुवन भास्कर उदित हुआ। शिशिरभादुड़ी के अनुसार बंगाली रंगमंच सुव्यवस्थित और व्यावसायिक रंगमंच है। अफसर जो विलक्षण अपवाद था[77] शीर्षक निबंधानुसार श्री पुरुषोत्तम मंगेश लाड उच्च सरकारी अफसर और मर्मज्ञ मराठी साहित्यकार के रूप में चित्रित है। किसी भी वर्ग और किसी भी प्रवृत्ति के व्यक्ति के संपर्क में आने पर लाड उससे घुलमिल जाते। इसलिए नहीं कि वे सफल नाते स्थापित करने की कला में सिद्धहस्त थे। बल्कि इसलिए कि वे नाते एक सहजभाव पर आधारित होते और स्वार्थ इतना कि ज्ञानलोलुप और रसलोलुप अंतस की तृष्णा पूरी हो सके। टैक्ट-भाईचारा और चाटुकारिता में वे चतुर न थे। फिर भी विभागों की हठधर्मी, अफसरियत की उदासीनता और दफ्तरों की मंथरगति उनके ~~क्षिप्रगति~~ क्षिप्रवेग कर्म को अवरुद्ध न कर सकी। सरकारी बातों को लिखने में वे जितने मितव्ययी और सावधान थे बातचीत और बहस में उतने ही आवेशपूर्ण

और जोरदार । मजे की बात यह थी कि लाड़ की तृप्ति कर्म और परिश्रम में हो जाती उसके फलस्वरूप जो प्रशंसा मिलती, उनके लिए वे लालायित न थे । 'आस्थावान अंग्रेज शिक्षक'[७८] शीर्षक निबंधानुसार एफ० जी पीयर्स अंग्रेजी शिक्षक और भारत में पब्लिक स्कूलों में विशेषज्ञ थे । उनके अनुसार शिक्षक तो माली हैं, वनस्पति विज्ञान वेत्ता या मुगल गार्डनों के नक्शे बनानेवाला इंजीनियर या स्थपति नहीं है । पीयर्स अंग्रेज थे । लंदन में सन् १८६२ में उनका जन्म हुआ था । वे जाति, रूप, रंग से अंग्रेज होते हुए भी वे सदियों पूर्व अशोक पुत्र महेन्द्र की अर्चना लिये हुए थे । वे प्रयाग के कायस्थ पाठशाला कालेज में प्रिंसिपल थे । वहां उनके रहने के लिए एक बड़ा बंगला था किन्तु पीयर्स अपने कुछ पुराने सहकर्मियों के साथ बहुत सीधे सादे ढंग से रहते थे । उनका वेतन खासा था, लेकिन अपने लिए दो सौ रूपये निकालकर बाकी जरूरतमंदों को बांट देते थे । अनुशासन और अध्ययन के बीज डालने के लिए पीयर्स ने डंडेबाजी का सहारा नहीं लिया । न भृकुटितानी, न घुड़कियां दीं । असल में पीयर्स ने प्राधानाध्यापक के रोब-दोष का उपयोग कभी किया ही नहीं । वे इंगलैण्ड के किसी भी प्रसिद्ध पब्लिक स्कूल में न तो छात्र रहे न अध्यापक । इसी कारण वह ग्वालियर स्कूल में भारतीय वातावरण और संस्कृति का समावेश भी कर सके । पीयर्स ने स्कूल की योजना तैयार करने में न ~~सिप्र~~ सिर्फ शिक्षा के उच्चादर्शों को साकार रूप दिया बल्कि बारीकियां और ब्यौरे प्रस्तुत करने में अपने अनुभव का भी । वे उन लोगों में नहीं थे, जो एक विद्वतापूर्ण रिपोर्ट तैयार कर पल्ला झाडकर अलग हो जाते हैं । मगर जब स्कूल का श्रीगणेश हो गया तब उसके बाद भी पीयर्स स्कूल की कमेटी के सदस्य बने रहे ।

'विराट स्वर के विधायक'[७९] शीर्षक निबंधानुसार पन्नालाल घोष का चित्रण हुआ है । पन्नालाल घोष द्वारा नियोजित अनेक गीत फिल्मी दुनिया में लोकप्रिय हुए। फिल्मी दुनिया में अनवरत धन संग्रह के बावजूद बांसुरी को शास्त्रीय संगीत का माध्यम बनाने का जो व्रत उन्होंने लिया था उसे वह भूल न सके । शिल्प की जिन बारीकियों को बांसुरी पर उतारने की कल्पना भी नहीं हो पाई थी वे पन्नालाल घोष के ही वादन

से प्रस्फुटित होने लगी। इस तरह आधुनिक भारतीय संगीत में बांसुरी की एक नयी शैली का विधान हुआ । अहर्निश एक सहज मुस्कान उनके चेहरे पर खेलती रहती थी । पन्नालाल घोष पिछले दिनों सहज स्वभावेन पारलौकिक प्रेरणाओं की ओर अभिमुख हुए थे और रामकृष्ण मिशन के सन्यासीयों का शिष्यत्व अंगीकार कर चुके थे । 'व्यवहार कुशल और संवेदनशील पंडित'[८०] शीर्षक निबंधानुसार अनंत सदाशिव अल्टेकर जो इतिहासज्ञ और पुरातत्ववेता हैं । सभी प्रशासनिक और व्यवस्था सम्बंधी मामलों में डा० अल्टेकर की सूझ पैनी थी और तथ्य की पकड़ वह उतनी आसानी से कर लेते थे जितना कोई अनुभवी सरकारी अफसर कर सकता है । असल में वे एक ऐसे अनुभवी पर्यटक की भांति थे, जो अपने निर्दिष्ट मार्ग का नक्शा पहले से बना लेता है । उन्होंने अपने जीवनकाल में कितने ही अनुसंधान किए, इतिहास के कितने ही अजाने कोष्ठों को ज्योतित किया। प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति और प्राचीन भारत में स्त्रियों की परिस्थिति का विश्लेषण किया ।

किशोर जीवन की मुस्कान ही जिसकी साधना थी[८१] शीर्षक निबंधानुसार श्री राम बाजपेयी जी भारत में बालचर संस्था के उन्नायक थे । बच्चों और किशोरों का विकास और उनकी अनवरुद्ध अभिव्यक्ति में ही उनकी जीवन साधना थी । वे शाहजहांपुर में एक स्कूल में मास्टर थे । वे अफसरों की तरह मेले के हेड क्वार्टर्स पर बैठ हुकुम नहीं देते थे । वह अफसर भी थे और 'सिपाही' भी । कोई मोर्चा ऐसा नहीं, जहां वह चक्कर न लगाते हों। किशोरों को प्रौढ़ों की जिम्मेदारी और महत्ता का आभास कराना बाजपेयी जी की विशेष टेकनीक थी। वे दार्शनिक न थे। व्यक्ति की छोटी-छोटी कमजोरियों के प्रति सहिष्णु थे । सहानुभूति और स्नेह से काम लेते थे । उन्होंने अपने सहकर्मियों को चुनने में मीनमेख नहीं निकाला । आदर्शों से प्रेरित होकर जो भी सेवाभाव से उनके पास आया, वही उनकी पंगत में शामिल हो गया। एक जन्मजात चक्रवर्ती[८२] शीर्षक निबंधानुसार सच्चिदानन्द सिंहा राजनीतिज्ञ, पत्रकार तथा वर्तमान बिहार के

के अग्रगण्य थे। सिन्हा साहब की पत्नी का बहुत पहले ही स्वर्गवास हो गया था। लेकिन उनके विधुर जीवन को निबंधकार ने भरापूरा ही देखा। उनकी घर-गिरस्ती का दायरा कभी संकीर्ण नहीं हुआ। डा० सिन्हा के व्यक्तित्व की यमुना वासुदेव के चरणों के समान गांभीर्य के चरणस्पर्श करते ही लौट आती- अपने चिर परिचित कलकल ध्वनि गुंजित प्रवाह पर। वे विधान सभा के सदस्य थे। अपनी सफलताओं की स्मृतियों को उन्होंने ऐसे ही तिरस्कृत कर दिया जैसे- वह अपने बढ़िया सिले और धुले सूट पर से आकस्मिक आ पड़ी धूल को झाड़ देते हों। वे रहस्य भरी मुस्कान में नहीं, ठठाकर हंसने में यकीन करते थे। वह हंसी जो सब रहस्यों का उद्घाटन कर दे। बिहार से विलायत जानेवाले पहले हिंदुओं में से वे थे और लौटने पर शायद उन्हें खासे विरोध का सामना करना पड़ा। अपनी जाति के वर्ग विशेष के बाहर उन्होंने शादी की।

'दृष्टा, कर्ता और कवि'[८३] शीर्षक निबंध में सुधीन्द्रनाथ दत्त जो बंगला कवि, पत्रकार और पर्यंथक हैं। उनके व्यक्तित्व का चित्रण हुआ है। मेरे पिता'[८४] लक्ष्मीनारायण माथुर आदर्शवादी हैडमास्टर और शिक्षक हैं। राजनीतिक जीवन में खुलेआम वह कभी नहीं उतरे। जान-बूझकर उन्होंने कीर्ति और नेतृत्व का पथ नहीं पकड़ा। सन् १६०८ में उन्नीस वर्ष की आयु में वह अपने कुटुम्ब के पहले बी० ए० हुए। एक बुजुर्ग के पूछने पर उन्होंने बताया कि मैं अध्यापक बनूंगा। मालूम नहीं किस तरह उनके मन में इस इरादे के बीज पड़े। जो भी हो बहुत सोच-समझकर उन्होंने इस पथ को पकड़ा। वाणी और लेखनी दोनों के धनी होते हुए भी उन्होंने दोनों ही का प्रासाद अपने शिष्यों ही को दिया। अपनी निजी स्वार्थ सिद्धि में उसे नहीं लगाया। निबंध के अन्त में एक और प्रसंग दिया गया है। यह भोजन का जिसमें निबंधकार के पिता, प्राधानाध्यापक और स्कूल का भंगी बराबर एक आसन पर, एक भूमि पर बैठे अन्नपूर्णा के प्रासाद की प्रतीक्षा कर रहे थे और उनके (पिता जी) चेहरे पर अमित शांति, अनंत करुणा, और अनिर्वचनीय संतोष खेल रहे हैं।

भगवतशरण उपाध्याय :

श्री भगवतशरण उपाध्याय लिखित ललित निबंध संकलन `सांस्कृतिक निबंध` हैं। जिसमें उन्होंने ऋग्वेद के विषयों पर अलग-अलग निबंध प्रस्तुत किए। इसके अतिरिक्त उन्होंने संस्कृत नाटकों पर भी अपने विचार प्रस्तुत किए हैं।

ऋग्वेद के रोमैण्टिक कवि`[८५] शीर्षक निबंधानुसार ऋग्वेद प्रौढ़ साहित्य होते हुए भी मनुष्य के आदिम उल्लास की कृति है। ऋग्वेद का जीवन मानव का जिया हुआ जीवन है। इस निबंध में रोमैण्टिक कवियों में से कुछ का उल्लेख हुआ है। श्यावाश्व, कक्षीवान और विमद आदि का। श्यावाश्व ऋषिपुत्र कवि था। इसकी कहानी प्राचीन काल के रोमांसों में से है। वह राजपुरोहित का पुत्र था। श्यावाश्व की एक प्रेयसी थी जो सुंदर राजकन्या थी। आश्चर्य और अभाग्य से श्यावाश्व का पिता धनी न था। इन दोनों का विवाह रुक गया। ऋषिपुत्र विलख उठा, वह कवि, व्यापक यश का धनी बन गया। ऋग्वेद के प्रायः दस सूक्त कवि श्यावश्व के हैं। इसके बाद कक्षीवान जो कि स्वयं दासी पुत्र है, बहुपत्नीक भी। इसके अतिरिक्त तीसरा है विमद जो ऋग्वेद का ब्राह्मण ऋषि है। इसकी कथा निबंध में कही गयी है। `ऋग्वेद के समन` शीर्षक निबंधानुसार ऋग्वेद के उस प्राचीन मानव ग्रंथ में उत्सवों और त्यौहारों से मिलते-जुलते एक प्रकार के मैले का उल्लेख हुआ है, जिसे `समन` कहते हैं। स्त्रियां विशेषकर कुमारियां वर की खोज में वहां जाती हैं। अनेक प्रणयी युगल के लिए `समन` संकेत स्थल का कार्य करता था। इस `समनों` में यौन सम्बंधी देवी इन्द्राणी की विशेष पूजा प्राचीन प्रथा के अनुसार हुआ करती थी। पिशेल के मतानुसार `समन` एक प्रकार का मेला था जहां आमोद के लिए नारियां जाती थीं, युवतियां और प्रौढ़ाएं पति की खोज में और वेश्याएं मौके से लाभ उठाने। मौर्य युग में इसी `समन` को समाज कहते थे। अशोककालीन समाज ने इसकी परिणति एक नितान्त घृणित संस्था में की जिसका सम्बंध वेश्याओं, गणिकाओं से था।

ऋग्वेद का जुआरी[८६] शीर्षक निबंधानुसार ऋग्वेद के दसवें मंडल का ३४वां सूक्त एक जुआरी की दिनचर्या और दुर्बलता का मनोहारी वर्णन करता है। उसकी मार्मिकता हृदय को छू लेती है। वर्णन वस्तुत: इतना सजीव और मांसल हुआ है कि लगता है तत्सामयिक समाज का एक पृष्ठ खुला पड़ा हो, यह अपनी सारी संपत्ति जुए में हार चुका है और बाद में अपनी पत्नी तक को दांव पर लगाकर हार जाता है। वह अपनी हीन दशा पर रो उठता है। उसकी हार ही उसे फिर खेलने को मजबूर करती है। वह रात्रि के अंधकार में अपने किए पर पछताता है परन्तु प्रभात के साथ आशा लौट पड़ती है। ये हुईं जुआरी की बात। ऋग्वेद में अगम्यागमन `शीर्षक निबंधानुसार `इन्सेस्ट` शब्द का व्यवहार किया गया है। प्रस्तुत निबंध में उस पर प्रकाश डाला गया है। माता, भगिनी यौन सम्बंध का सबसे सबल प्रमाण ऋग्वेद के दसवें मंडल के दसवें सूक्त में मिलता है। सगोत्र विवाह की परंपरा आर्यों में प्रतिष्ठित हो चुकी थी- परन्तु माता-भगिनी विवाह का सबसे उत्कृष्ट और अकाट्य प्रमाण पौराणिक परंपरा में मिलते हैं। जो ऋग्वैदिक समाज के पूर्व और पर सम्बंधी दोनों स्थितियों को समान रूप से प्रकट करते हैं। यहां पर अलग-अलग ग्रन्थों में इसके अलग-अलग मत प्रदर्शित हैं। ऋग्वेद में विधवा, सती और नियोग`[८७] शीर्षक निबंध में ऋग्वेद का साहित्य उसके समाज की तरह ही पूर्ण विकसित स्थिति में हमारे सामने खुलता है। ऋग्वेद में विधवाओं के अस्तित्व के कुछ उदाहरण मिलते हैं। उनसे अधिक विधवा विवाह के कुछ सती के और अनेक नियोग के उदाहरण की चर्चा की गई है। नियोग की प्रथा सदाचरण को खोखला और पति को ईर्ष्या का अंत करने को पर्याप्त थी। नारी के अधिकार सुरक्षित थे। अविवाहित विधवाएं समाज में रही रही जाती थीं, जिनकी पुत्र प्रसव करने की आयु बीत चुकी थी। जिस विधि से इन विषम परिस्थितियों में भी वह पुत्रोत्पत्ति का कार्य जारी रखा जाता था उसे नियोग कहते हैं। ऋग्वैदिक युग में बहुपत्नी बहुपति-विवाह` शीर्षक निबंधानुसार राजाओं और ऋषियों में बहुविवाह की प्रथा थी। विद्वानों के मत से बहुपति विवाह अनार्य प्रथा थी परन्तु संहिता से उपलब्ध प्रमाण के अनुसार वह रीति आर्यों में भी थी। उदाहरण-कुन्ती और माद्री ने अपने पति-

पांडु के रहते हुए सूर्य, धर्म, वायु, अश्विनीकुमार आदि से पुत्र जने थे। पांच पांडवों का द्रौपदी से विवाह। महाभारत में इसे सामान्य बनाने का यत्न हुआ है। परन्तु इससे समाधान नहीं हो पाता।

`संस्कृत के नाटक` शीर्षक निबंधानुसार कालिदास ने नाटकों को `शांत चाक्षुष` यज्ञ कहा है। उन्होंने अपने पहले के नाटककारों में महान् भास, सौमिल्ल और कवि पुत्र का उल्लेख किया है। भारतीय नाटकों में कुछ लोगों ने नाटक का आरंभ विष्णु पूजा के आधार से माना है, कुछ ने पुतलियों के नाच से, कुछ इसका मूल वेदों में देखते हैं, कुछ ग्रीक रंग व्यवस्था में। सही तो यह है कि भारतीय नाटकों और ग्रीक नाटकों में अंतर अधिक है, समानता कम। संस्कृत नाटकों में सबसे अधिक जोर रसबोध और रसात्मकता पर दिया गया है। नाट्य-नियमों-उपनियमों से वे पर्याप्त बंधे रहे हैं। नायक, उपनायक, विदूषक, नायिका आदि सबका स्वरूप निश्चित होता है। इसमें कथावस्तु की पांच संधियां रहती हैं। संस्कृत में नाटक का शास्त्रीय नाम `रूपक` है। संस्कृत के प्रधान नाटककारों का उल्लेख किया गया है। बौद्ध-चीनी दंतकथाएं` शीर्षक निबंधानुसार बौद्धों और न चीनियों दोनों की अपनी-अपनी गाथाएं अपने अपने पुराण और दंत दंतकथाएं हैं। बुद्ध के जीवन से सम्बंध रखनेवाली अनेक घटनाओं का कुछ ऐसा चमत्कारी और जादूभरा बयान मिलता है कि घटनाएं अलौकिक बन जाती हैं। लुम्बिनी के जंगल में शाल पेड़ की डाली पकडे खड़ी माया की कमर से गौतम का पैदा होना, पैदा होते ही उनका सात कदम चलना और कदम-कदम पर कमल के फूल का उगकर इनके चरणों को अपने उपर लेना और इन्द्र-ब्रह्मा आदि देवताओं का फट नये जन्मे बालक को आकर उठा लेना। पौराणिक विश्वास की ओर ही इशारा करता है। पर इनसे भी महत्व के बौद्ध पुराण, बुद्ध के जन्म की वे कथाएं हैं जो जातक कहलाती हैं। इसका वर्णन किया गया है। `हिमालय की व्युत्पत्ति` शीर्षक निबंधानुसार भारतीयों के मत से हिमालय का विस्तार पूरब से पश्चिमी समुद्र तक है। कालिदास कहते हैं उत्तर दिशा में गिरिराज हिमालय है जो पूर्व

और पश्चिम के समुद्रों में प्रवेश करता हुआ पृथ्वी के मापदण्ड सा स्थित है । प्राचीनों की राय में भारत की उत्तरी भौगोलिक और राजनीतिक आदर्श सीमा प्रस्तुत करना था। कालिदास ने इसका वर्णन अच्छी तरहसे किया है ।

'मिस्त्र और पश्चिमी एशिया के साहित्य और जनविश्वास'[88] शीर्षक निबंध में संसार के अचरज ये पिरामीड प्राचीन मिश्रियों के मकबरे हैं जिनमें राजाओं के मृत शरीर बचा के रखे गये हैं । साधारण तौर से प्राचीन मिश्री नर और नारी प्रसन्न जीव थे । सुमेर में छोटे-छोटे नगरों के अपने अपने राज थे । जहां पहले पुरोहित राजा राज करते थे । उनके राजा ने गीली ईंटों पर कीलनुमा अक्षरों में लिखे प्राचीन सुमरी बाबुली सभ्यता के साहित्य को अपने पुस्तकालय में इकट्ठा कर उसकी रक्षा की । उन्हीं से जाना गया कि वहां सबसे पुराने में हर नगर के अपने अपने देवता थे । प्राचीन ईरान में देवताओं के अलावा पितरों की भी पूजा होती थी और उनके पराक्रम की कथा गाथाओं में गाई जाती थी । प्राचीन मिश्र का शंकर इख्यनातून शीर्षक निबंधानुसार मजहब चलानेवाले राजाओं में पहला नाम इखनातून का है । वह शानदार पिता और रोबीली माता का बेटा था । इखनातून की दिमागी सूझ से बढ़कर अपने नये धर्म के प्रचार की, इन्कलाब की उसकी भावना थी। उसके प्रचार के लिए प्यार भरे शब्दों का उसका व्यवहार था । 'बाबुल का व्यापार' शीर्षक निबंधानुसार यहूदी और ग्रीक लेखकों ने प्राचीन बाबूल का जो वृतान्त छोडा है उससे वहां के धन और गौरव का पता चलता है व्यापार की दृष्टि से बाबुल की स्थिति एशिया के प्रत्येक प्रदेश में संभवत: अच्छी थी । प्राचीन लेखक बाबुल निवासियों को विलासी और वैभवप्रिय लिखते हैं। 'अफ्रीकी दंतकथाएं' शीर्षक निबंधानुसार अफ्रीका का महाद्वीप अंध महाद्वीप कहलाता है । क्योंकि उसके सबसे बड़े हिस्से पर अज्ञान का अंधेरा छाया हुआ रहता है । मध्यकालीन कला की पीठिका ' शीर्षक निबंधानुसार मध्यकालीन कला भावगर्भित सामाजिक पीठिका है । गुप्तकाल ने अपनी निष्ठा और लगन से पहले के रूढिनिष्ठ मानों को त्यागकर यथादर्शन मानव को उसके स्वाभाविक रूप में देखा और लिखा ।राजनीति से जनत

उदासीन थी । क्योंकि जनता उस राजनीति से वंचित रही थी। अजन्ता और एलौरा' शीर्षक निबंधानुसार किस तरह इन्सान की खूबियों की कहानी सदियों बाद आनेवाली पीढ़ियों तक पहुंचायी जाय, इसके लिए आदमी ने कितने ही उपाय सोचे और किये । सारे प्राचीन सभ्य देशों में पहाड़ काटकर मंदिर बनाए गए हैं और उनकी दीवारों पर एक से एक अभिराम चित्र बनाये हैं । गुहाचित्र की बुनियाद स्वयं अजन्ता-भारत की पुरानी परंपरा का नमूना है । अजन्ता की गुफाएं पहाड़ काटकर बनाई जानेवाली देश की सबसे प्राचीन गुफाओं में से है । जैसे एलौरा और एलिफेंटा की सबसे पिछले काल की । उनकी खोज की कहानी अचरज से भरी है । चार पांच गुहा मंदिर एलौरा में जैनों के भी हैं ।

विवेकीराय :

श्री विवेकीराय ने ललित निबंध के क्षेत्र में अपना निबंध संकलन 'फिर बैतलवा डाल पर' प्रस्तुत किया । उनके इस संकलन में अलग-अलग विषयों पर विचार प्रस्तुत किया गया है ।

'चतुरी चाचा से मुलाकात'[८६] शीर्षक निबंधानुसार चतुरी बाबा के मकान का वर्णन किया गया है। चतुरी चाचा का स्वर्गीय वैभव था । यहां पर चतुरी चाचा से जो भी बातचीत (निबंधकारकी) हुई इस पर प्रकाश डाला गया है । अध्यापक की जिन्दगी दमघोट की यानी घुटक की जिन्दगी होती है । आज अध्यापक भूखा है, शिक्षा सूखी है, फिर देश में सरसता आवे कहां से ? इसके बाद कुछ राजनीतिक विषयों को लेकर चर्चा हुई है । राजनीति से धर्म,समाज और गृह शिक्षा से होते-होते वार्ता पाकशास्त्र पर आ गयी । पाकशास्त्र में असल चीज है भोजन, यही आरोग्य का जनक है और यही रोग की जड़ भी है । चाचा जी ने प्रकृति के अनुसार भोजन लेने पर भार दिया है । 'कवि सम्मेलन'[९०] शीर्षक निबंधानुसार कवि सम्मेलन क्या है, शुद्ध नाच है, सस्ते कवि,

सस्ती कविता । यह कवि सम्मेलन पास के ही एक गांव पर था । कवि उपर से जगत का गुरु है नीचे से गोबर । प्रकृति को चित्रित किया गया है । वसन्त की संध्या का समय है । मधुर उदासी, हल्की गरमी, पत्तियों की धूल के साथ उड़ती लेखक की साइकिल, कुछ लोग खड़े, तो कुछ टहलते, इनमें से कुछ लोग बैठे हुए मनचर्या में लीन । अनेक लोगों के चेहरे पर उत्सुकता और आंखों में खोज है । यहां पर तमाम रईस और बड़े- बड़े आदमी आए हैं । मिलन अध्याय समाप्त हुआ, अंधेरा हो गया । जुलूस पीछे छूट गया और मैं(अर्थात् लेखक) साइकिल पर लौटा रहा हूं । 'दूखन' शीर्षक निबंध में दूखन का जीवन चित्रित किया गया है। व पचहत्तर वर्ष की उसकी आयु है । उसने सारी जिंदगी खूब कमाया। उसकी सारी कमाई चली गयी तो बुढ़ापे में बेटे-बहू ने मिलकर घर से निकाल दिया । यहां पर निबंधकार ने दूखन के जीवन को चित्रित करके बताया है कि भाग्यवाद और कर्मवाद का क्या ही सुन्दर समन्वय है । दूखन सबसे महान हैं वह बेसहारा, अकिंचन होने पर भी मुफ्त में खाना नहीं खाता । वह कलाकार है, हृदय विश्वास की सुदृढ़ चट्टान पर प्रतिष्ठित है । सुर्तीकाण्ड' शीर्षक निबंधानुसार व्यसन आदमी को कहां ले जाता है यह बताया गया है । मास्टर जी के दुर्व्यसन की बात करते हुए बताया गया है कि उनको सुर्ती की आदत लगी हुई है । सुबह होते ही वे सुर्ती खोजने लगते हैं मास्टर जी का वेतन आने में काफी दिन बाकी पड़े हुए हैं, उनके पास सुर्ती नहीं है ।और किसी से चीज मांगने के लिए आदमी को कितना प्रपंच खड़ा करना पड़ता है और वह भी विपन्न याचक भाव में ?

'भाषण का असर' शीर्षक निबंधानुसार यहां पर गांव के लोगों के सामने एक मास्टर जी अपना भाषण ठोक रहे हैं । उनके अनुसार दिन भर का भूला आदमी शाम को घर आ जाता है तो इसमें उसकी चतुराई है ।गांव के लोगों से प्रतिज्ञा करने को कहते हुए बता रहे हैं कि अपने पसीने की कमाई ही खायेंगे । वास्तव में ग्राम सुधार असंभव नहीं है मगर समस्या यह है कि गांववालों को ठीक रास्ता बतानेवाले नहीं हैं ।

सबसे कमी है गांव में समझदार लोगों की । आज जो भी पढ़-लिखकर निकलता है वह शहर में जा धंसता है, गांव में रह जाते हैं निरक्षर या अर्धसाक्षर या मूर्ख । समझदार लोग इनसे समझदारी की बात नहीं करते । 'एक हजार की थैली'[61] शीर्षक निबंधानुसार पंडित और विद्वान का चेहरा छिपता नहीं है । लाखों में उसका तेज जगमगाता रहता है । यहां पर धन्यप्रसाद सिंह जी की बात कही गयी है जो गांववालों के सिरताज हैं। बच्चे-बच्चे के मुंह पर उनका यश विराजमान है । एक दिन गांव के कई लोग उनके घर दान लेने गये तो बड़ी हिचकिचाहट के बाद ठाकुर साहब ने दो रूपये का नोट आगे बढ़ा दिया । यह कहकर कि 'अच्छा जैसी मरजी आप लोगों की । खुशी का दान महाकल्याण । लीजिए इसे आप एक हजार की थैली समझियेगा ।' लोग यह देख आश्चर्य चकित हो गए । 'सभापति, मास्टर और नेता' शीर्षक निबंधानुसार ग्राम सभापति जी का पैर आज जमीन पर नहीं पड़ रहा है । कई आनेवाले आगन्तुक हैं । कई जिलों के नेता । पंडित जवाहरलाल नेहरू की बगल में जो कुरसी पर बैठनेवाले जनता की नींद के साथ सोने जागने वाले और विद्या बुद्धि से भरपूर आर.सी. पंडित पधारे रहे हैं। तीन बज गया फिर भी कोई नहीं आया । गांव के सभापति, उप सभापति, नये नेता चौधरी, सरदार और अगुवा लोग कुछ सुन नहीं रहे हैं । उनके कान मोटर की भरभराहट और हौर्न सुनने को व्याकुल हैं । गांव के तमाम लोग गालियां दे रहे हैं । सभापति मास्टर को अपने साथ लेकर शहर पहुंचते हैं । सभापति जी जिसे देखते ही तरस आता है । बेचारे भोले-भाले ग्रामीण, अपने ही समान सबको समझते हैं । शहर आकर देखा तो उनकी आफिस में नेता जी कागजों में इस प्रकार डूब गये हैं कि न सभापति जी की कुछ हिम्मत है कहने की न मास्टर जी की । उन दोनों की ओर देख नेता जी ने कहा- और कहिए मास्टर साहब क्या हाल है ? बहुत अच्छा है, अब आज्ञा दीजिए, चलें अच्छा । हैं---हैं---हैं---- नमस्ते । योग्य सेवा के लिए बराबर याद कीजिए और ऐसे ही कभी-कभी दर्शन देते रहने की कृपा करेंगे । नेता ने कहा और फिर कागजों में डूब गये । 'चौबे जी का चमत्कार'[62] शीर्षक निबंधानुसार सूचनाधिकारी ने ध्वनि विस्तारक यंत्र में कहा कि अब फिल्म दिखायी जा रही है जो जहां बैठा है वहीं बैठ जाये । परदे के दोनों ओर दिखायी पड़ेगा । उधर आसमान से एक बड़ी बूंद आकर मुखिया साहब की ठीक नाक पर गिरी । इससे पुराने विचारों वाले -

तिवारी जी ने सलाह दी- 'गदहे के कान में तेल डाल दो, 'पानी बन्द हो जायगा । उनके अनुसार युवानों ने किया । इसके बाद एक और साधु है जो गरम दूध पीकर पानी बरसना रोक देते हैं ? घी खाकर ढेर सा अन्न उगा देते हैं, दही खाकर गरीब को धनी कर देते हैं आदि वास्तव में चौबे जी अल्पबचत योजना के आरगनाइजर हैं।

'परिभाषा का चक्कर' शीर्षक निबंधानुसार प्राचीन अन्धश्रद्धाओं का चित्रण किया गया है । मान्यताएं और अंधश्रद्धा में मानवी फंस जाता है । घर के सामने सुबह-सुबह एक गिद्ध आकर बैठा है जिसे वहां से उडाने के लिए औरतें, बूढ़े, अपने-अपने अंधविश्वास बताने लगे । और उसके न उडने के अपशगुन भी बताये गये हैं । और पंडित लोग भी अपना तर्क-वितर्क देते हैं । प्राचीनकाल में पंडित जी लोगों में अंधविश्वास पैदाकर लूटने का धंधा करते थे । जब कोई उनको भोजन का निमंत्रण देने आता है तो वे बिना शर्म के उससे सब कुछ मुफ्त में प्राप्त करना चाहते थे । 'बड़ा साहब' शीर्षक निबंधानुसार बडा साहब का रौब है, दाव है, दर्जा है । डिग्री है, कुरसी है सबसे पृथक व्यक्तित्व है । स्कूल ही एक ऐसी जगह है जहां लडके सीखते हैं बड़ा बनना, राष्ट्र बड़ा बन जायगा, पोजीशन सीखेंगे । आज अनुशासन की समस्या ने विकट रूप धारण कर लिया है। यह राष्ट्र का कलंक है, इसके लिये समाज उत्तरदायी है। जहां प्रेम नहीं एकत्व नहीं, सहयोग नहीं, मनोयोग नहीं, वहां स्वार्थ, परम्परा अथवा आतंक कहां तक मानवीय विकास की कड़ियों को जोड़ने में समर्थ होंगे । रामबाबू बी०डी०ओ० '[६३] शीर्षक निबंधानुसार समाज में तिलक का रिवाज आमतौर से कुछ खास बातों पर निर्भर करता है । पहले जमीन पर तिलक चलता था, लड़के-लड़की की खरीद-बिक्रीवाला तीसरे आजकल लड़के की शिक्षा पर चलता है । यहां पर रामबाबू जो गांव का रईस आदमी है रामबाबू के लड़के की शादी तय होती है उनके अनुसार लडके-लड़की का खरीदारी करनेवाला यह जंगली रिवाज खत्म होना चाहिए । मगर सारा कथन पहाड़ का पानी हो गया । लोगों के बहुत कहने पर उन्होंने कहा -'जब आप यही चाहते हैं कि मैं आपसे रूपया मांगू ही तो आप २० हजार रूपया दीजिए ।' आगे वे लोगों से कहते हैं वे एक काइंया निकले एक

वाक्य में ही उन्होंने सारे तर्कों को हवा कर दिया वे बोले- तिलक मैंने नहीं मांगा बल्कि आप लोगों ने मंगवाया है, न तो मैंने अपनी पोजीशन का ध्यान रखा है, न सम्पत्ति का और न अन्य किसी बात का । मैंने तिलक आपकी पोजीशन आपकी पसंदगी का मांगा है । सम्बंध लड़के और लड़की का होता है । शादी होने से पहले कन्या के बारे में जानना था । लोगों के बताने पर वे बी०डी०ओ० के यहां जाकर देखते हैं तो न तो वह आदमी है, न लड़की का भाई, न कोई जनता का सेवक बल्कि एक अफसर है। एकदम खाँटी अफसर । आसमान में आलू उगानेवाला, जीप पर फर्र-फर्र उड़नेवाला मेरी ओर तो आंख उठाकर देखा तक नहीं। खूब सुशीलता का दर्शन किया अपने-अपने संभवित पुत्रवधू के भाई के स्वभाव में ।

`मुखिया साहब` शीर्षक निबंधानुसार संक्षेपतया देखें तो ये बूढ़े गांव के मुखिया हैं । इनके लडके की शादी थी बरात करनपुर गई थी और विदाई के समय दहेज में कुछ कमी होने के कारण ये नाराज होकर चले आये। और कुछ लोग बेटीवाले की दशा पर तरस खाकर इनके सारे रिश्तेदारों ने सारी शेष रस्म पूरी करा दी और लड़की को विदा करा आए। इतने में मुखिया के बड़े भाई और उसके बीच में झगड़ा होता है बहू को बिदा कर के लाने पर जबकि दूसरी ओर गीत की ध्वनि मुखिया के कान में पड़ी तब वह मुखिया का सारा ताव जैसे एकदम उतर गया। `अफीम की बात` शीर्षक निबंधानुसार एक बारात का चित्र हमारे अंतरचक्षुओं के सामने उभरने लगा यह बारात क्या गडेरों की सभा हो गयी। कभी वे बेटीवाले पर बिगड़ते हैं, पानी पीने का प्रबंध नहीं, किसी प्रकार बत्ती ठीक हुई तो उन्हें थोड़ी राहत मिली । इसी बीच किसी ने कह दिया, `नाचनेवाले अब तक नहीं आये ?` और फिर क्या था ? फिर मालिक भड़क उठा । नाचनेवालों ने आकर नाच शुरू किया । बेचारों को बारात का पहला मौका संभालना है । `गांधी जी और कालीभाई`[६४] शीर्षकनिबंधानुसार यह सोचकर ग्लानि होती है कि जिस युग में गांधी जैसा महामानव पैदा हुआ उस युग का आदमी कैसे हीन का

हीन ही रह गया । पुरजनपुर में बीस हाथ लम्बा, आठ साल चौड़ा और तीन हाथ ऊँचा पक्का गांधी चबूतरा बनाया गया है । मगर वह स्थान बहुत गंदा और,बेमौके का है । गंदगी के बीच यह गांधी व चबूतरा मानो अभिशप्त मजार है। वैसे बेनीपुरी का गांधी चबूतरा देखने लायक है । सभापति जी ने पाकड़ के पेड़ के नीचे का टीला दिखाया और बोले यही गांधी चबूतरा है। यहां तो कालीमाई की पूजा हो रही है। जनता द्वारा हर साल भण्डा बदला जाता है । काली जी के चबूतरे की मरम्मत हो जाती है जब कि गांधी जी के चबूतरे की ओर कोई दिलचस्पी नहीं लेता ।

'प्रेतलीला'[६५] शीर्षक निबंध में आज के युग में भूतप्रेत पर विश्वास करने की बात बहुत बेढ़ंगी है । गांवों के आसपास या खेतों में हड्डियां पड़ी होती है , उनमें से एक प्रकार की गैस निकलती है उसे ही लोग भूत प्रेत कहते हैं । यहां पर पंडित जी की भूत प्रेतों के बारे में कि गई संशयात्मक बातें की गई है । 'चूहे अंग्रेजी और घूस' शीर्षक निबंधानुसार कहते हैं चूहे, गणेश जी की सवारी है पर हमारी समझ में जिस प्रकार ये अंग्रेजी राज में महामारी के वाहन थे उसी प्रकार अपने राज में अकाल,दरिद्रता,गरीबी और बहोली के वाहन हो गये हैं । वे कचहरियों में, दफ्तरों में, रेल में, थाने में, स्कूल में, पंचायत विभिन्न परिषदों, बड़े बड़े स्वदेशीय प्रतिष्ठानों में उसी प्रकार व्याप्त है जिस प्रकार अदृश्य होकर भी इस संसार में ईश्वर। गांधी जी के मत से स्वराज्य होने के बारह वर्ष बाद भी भारतीयों को इस प्रकार कीड़े-मकौड़े जैसा अधमरा जीवन क्यों बिताना चाहिए? ----खेद, चूहे और इस जाति के अन्य शोषकों ने तुम लोगों को इस कदर निर्बल कर दिया कि स्यारों के लिए सिंह होना तो दूर की बात रही। तुम लोग चूहों के लिए बिल्ली भी नहीं बन पाए ।

धर्मवीर भारती

सांस्कृतिक :

श्री भारती जी ने सांस्कृतिक निबंधों में संस्कृति का वर्णन किया है। इसके

अतिरिक्त अलग-अलग संस्कृतियों से भारतीय संस्कृति का अलगाव भी कहीं-कहीं हमें देखने को मिलता है ।

'सत्याग्रह की अंगरेजी क्या है ?'[६६] शीर्षक निबंधानुसार सांस्कृतिक विघटन के जहर को मारने के लिए संस्कृति कितनी महत्वपूर्ण कार्य कर सकती है इसकी ओर सभी ने संकेत किया है । संस्कृत नाम से भड़कनेवाले उस वर्ग के लोगों ने देश की वास्तविक समस्याओं को न कभी जाना है न जानने की कोशिश की है । हमारे देश की आत्मा जिस लम्बे बहुपक्षी इतिहास विराट समन्वय और आध्यात्मिक खोज से अपने में समाहित किये हुए हैं । उसकी विविध अनुभूतियों की अभिव्यक्ति उन्हीं भाषाओं के शब्दों से भी हो सकती है जो हमारे देश की है । 'अंगरेजी भी बनाम अंगरेजी' शीर्षक निबंधानुसार किसी जाति के लिए दया और किसी जाति के लिए दमन संसार के किसी भी देश के इतिहास में ऐसी अद्भुत विधा न सुनी न देखी । अपने भारत की वह प्राचीन विधा आज भी जीवित है हम तो सिर्फ यह देखकर प्रसन्न हैं कि कैसे प्रजापति के एक ही अचार में सभी को प्रसन्न करने का सामर्थ्य है, देश की एकता के लिए जूझनेवाले हिन्दी प्रेमी तत्व भी प्रसन्न हैं । 'ताजमहल खरीदिए'[६७] शीर्षक निबंधानुसार बाजार में बिकनेवाले काठ, संगमरमर और प्लास्टर के ताजमहल के हाजारों नमूने विदेशी यात्री प्रतिवर्ष खरीदकर अपने-अपने देश ले जाते हैं । भारत के तथाकथित अंगरेजी लेखक और साहित्यकारों में से अधिकांश की कृतियों में भारतीय जनजीवन का बड़ा ही सतही और सनसनीखेज चित्रण मिलता है । ऐसा जो विदेशी बाजार की सस्ती सूचियों को संतुष्ट कर सके । लेकिन मनोरंजन या मर्मस्पर्शिता के नाम पर इतिहास की शुद्धता का बलिदान किया जावे तो भारतीय जीवन को गलत ढंग से चित्रित किया जाय यह वांछनीय नहीं माना जा सकता । लेकिन प्रत्येक नागरिक का भी यह दायित्व होता है कि वहां इस दिशा में सचेत रहे और बराबर विचार करता रहे । एक सामन्ती जमाना था जब ठीक-ह

ठीक ताजमहल बनानेवाले के हाथ कटवा दिये गये, आज ~~वह-जमा~~वह जमाना बदल गया है। `मानसरोवर और दिल्ली के हंस` शीर्षक निबंधानुसार मानसरोवर यात्रा हमारी हजारों वर्षों की अटूट परम्परा है मानसरोवर का महत्व है या नहीं, तीर्थयात्रा उचित है या अनुचित ... अगर समझौते के अनुसार मानसरोवर जाना भारतीय नागरिक का अधिकार माना गया है। लेकिन इसके पीछे हमारा ऐतिहासिक गौरव और सांस्कृतिक उपलब्धि रहती है वह तो अमूल्य है। हर ग्रंथ में जहां कैलास मानसरोवर की महिमा का वर्णन है वहां नीचे-नीचे एक टिप्पणी जुड़वा देनी चाहिए। जब से हिन्दी-चीनी भाई-भाई नहीं रहे तब से मानसरोवर का महत्व कम हो गया। भारत के नये तीर्थों का महत्व बढ़ गया है। `जब जब बोले राजा जी`[६८] शीर्षक निबंधानुसार अलग-अलग धर्मगुरुओं की उपवास के बारे में मान्यताएं वहां पर प्रदर्शित है। जब जीसस क्राइस्ट ने उपदेश दिया था तब उपवास आत्मशुद्धि का साधन था, और क्राइस्ट, बुद्ध, महावीर, गांधी जिन्होंने भी उपवास का सहारा आत्मशुद्धि के लिए लिया था, जैसे आजकल के उपवास आत्मशुद्धि के लिए नहीं होते -इसलिये उन पर ईसा, गौतम, महावीर या गांधी के उपवासों की कसौटी लादना असंगत है। धर्म और कलात्मक सुरुचि हमारे देश में एक सूत्र में बंधे हुए थे तभी वल्लभ के आंदोलन ने सूर और नन्ददास पैदा किये। रामानन्द के आन्दोलन ने कबीर और तुलसी। `अष्टग्रही` शीर्षक निबंधानुसार अंधविश्वास और अविवेक से भरा भय सिर्फ ज्योतिष से पैदा हो रहा है यह जरूरी नहीं, वह विज्ञान से भी पैदा हो रहा है और झूठे आदर्शों से भी। जैसे यहां ज्योतिषियों ने कवच बेचे वैसे ही पश्चिम में बड़ी-बड़ी विशाल कम्पनियाँ बने-बनाये अणु सुरक्षा तहखाने बेच रही हैं। `रंग की रवायतें` शीर्षक निबंधानुसार गोरे और काले रंग पर अलग विचार प्रदर्शित हैं काफी अरसे से दक्षिण अफ्रीका में गोरे शासकों ने काले लोगों पर प्रतिबंध लगा रखे हैं। गोरे और कालों में किसी भी प्रकार का मिश्रण नितांत वांछनीय है लेकिन व्यवहारिक स्तर पर यह मान लेते हैं कि एशिया की अन्य सभी कौमें काली है, सिर्फ जापानी लोग गोरे हैं, उनको होटलों में वही सुविधाएं प्राप्त होंगी, जो गोरे से है।

यही काले-गोरे का भेद हर संस्कृति को मिटा सकता है ।

प्राकृतिक :

डा० धर्मवीर भारती ने यात्रा विवरणों में ज्यादातर प्रकृति का वर्णन किया है । प्रकृति के एकात्मकता महसू महसूस करते हुए उन्होंने कूर्मान्चल में कुछ दिन`[९९] शीर्षक निबंध मे हिमालय का वर्णन किया है। हिमालय की बमु बर्फीली चोटियों की छांव में फूल, फल, झरने छाये हुए हैं । निबंधकार शाम की धुंधली तस्वीर का वर्णन करते हैं । गांव में बहुत ऊंची पर्वत श्रृंखला की ओर मीलों लम्बा फलों का बगीचा है । जंगलों में एक चिड़िया निरन्तर रट लगाने लगती है जुहो । जुहो। जुहो । कौसानी के झरनों पर, कत्यूर में गोमती के किनारे यह पुकार हर यात्री को सुनाई पड़ती है । मैदान सूरज की आग की तरह तपता है, जहां झरनों और जंगलों का नाम-निशान नहीं है। भूख अजगरों की तरह धधकती लूएं आदमी को शापित निगल जाती हैं। कूर्मांचल हिमालय का द्वार है। महात्मा गांधी ने अपने जीवन के कुछ दिन यहां बिताये थे और उन्होंने इस स्थान की तुलना स्विटरजरलैन्ड से की थी। कोसी से एक सड़क अलमोड़े की ओर चली जाती है, दूसरी कौसानी । गांधी जी ने यहीं अनासक्ति योग लिखा था, स्विटजरलैण्ड का आभास कौसानी में ही होता है । इसकी पर्वतमाला के अंचल में कत्यूर की रंग-बिरंगी घाटी है, इसका सौन्दर्य इतना सुकुमार,सुन्दर सजा हुआ और निष्कलंक है कि इस धरती पर जूते उतारकर पांव पोंछकर आगे बढ़ना चाहिए, अन्त में हम देखते हैं कि गोमती की उज्ज्वल जल राशि में हिमालय की बर्फीली चोटियों की छाया तैर रही है। `शुक्र तारेवाली एक शाम`[१००] शीर्षक निबंधानुसार रात हो गयी थी, चारों ओर खामोशी थी, सर्दी थी, ठिठुरन थी और कोहरा था । अचानक कोई तेजी से चमका, बर्ज-ब वह चमक ऐसी थी जैसे अंधेरे की विराट लीला में अकस्मात कोई चमकदार मछली उछलकर फिर तम में बैठ जाये । शुक्रतारा अशनस । कीट्स ने सानेट में इस अदम्य जाज्वल्यमान नक्षत्र से स्थिरता की कामना की थी। जैसे युग युगों से अपने स्थान पर जड़ा हुआ वह नक्षत्र स्थिर है, अचल है- काश कि कीट्स भी वैसा ही हो पाता ।

कलाकृति हमेशा चिरन्तन गतिशील जीवन को एक ऐसे बिन्दु पर बांध लेती है जहां जादू से चलता फिरता जीवन हमेशा के लिए बंध जाता है जब तक वह स्थिरता का क्षण नहीं मिलता हम कलासृजन नहीं कर पाते । कीट्स उसी तारे से कहता है कि - 'काश मैं तुम जैसा अचल होता । पर स्थितप्रज्ञ विरक्त योगी की तरह नहीं- जैसे तुम हो बिलकुल अलग । गंधराज और शिरीष के पीछे से धीरे-धीरे शुक्रतारा उठ रहा है, कितन प्यारा लगता है अपने छोटे से फूल बसे घर के आंगन में रजनीगंधा के फूल जैसे उजले शुक्रतारों का रातभर महकना । 'क्षणों की अथाह नीलिमा'[१०१] शीर्षक निबंधानुसार दूसरे क्षण की अथाह नीलिमा का वर्णन किया गया है और नीला क्षण एक वह भी था जब हिमालय की घाटियों में पहली बार नीले बादलों के श्वेत अंधकार से घिर गया था और सब कुछ लुप्त हो गया था । वसन्त का वर्णन भी यहां पर निबंधकार ने किया है ।

ऐतिहासिक :

डा० धर्मवीर भारती जी के निबंधों में इतिहास वर्णन भी उचित होता है। इतिहास विषायक निबंध में उनके वे निबंध आते हैं जिनमें किसी स्थान का ऐतिहासिक वर्णन किया गया है ।

'एशियाई इतिहास और पश्चिमी फारमूले'[१०२] शीर्षक निबंधानुसार सरदार के एम पाणिक्कर भारत के उन इतिहास लेखकों में हैं जिनमें न केवल पैनी दृष्टि और विलक्षण विश्लेषण प्रतिभा है, वरन् जिनमें जमी-जमायी तर्कहीन धारणाओं की उपेक्षा कर अपने आप शोच-विचारकर निष्कर्ष तक पहुंचने का साहस है। पश्चिम का लेखक, विचारक, या चिन्तक भारत के बारे में या एशिया के बारे में जो पत्र प्रचारित कर दे वह हमारे लिए भी पत्थर की लकीर बन जाता था । आखिरकार सच्चा एशियाई क्या था, क्या है, क्या हो सकता है इसकी खोज कम हो पायी, म पश्चिमी दिमाग से उपजे एक नकली और निंदनीय एशिया की तस्वीर इतिहास में चित्रित

की जा रही और उसे एशियाई भी आँख मूंदकर स्वीकार करते रहे । 'ये ठग हटें तो मुसाफिर को रास्ता मिल जाय' शीर्षक निबंधानुसार राजनीति अपनी जगह मुकम्मिल है- इसका महत्व और उपयोगिता अपनी जगह है । समाज है तो व्यवस्था की जरूरत पड़ेगी, व्यवस्थापक रहेंगे, शासक रहेंगे और राजनीति रहेगी । कभी-कभी यह भी लगता है कि राजनीति या शासन की अपनी सीमाएं होती हैं। 'राजनीतिक नियति' और भारतीय लेखक' शीर्षक निबंधानुसार तोल्सताय के जमाने में जार और नैपोलियन दोनों शासक थे लेकिन साहित्य चिन्तन, दर्शन, सिद्धान्त और मूल्यों के क्षेत्र में बुद्धिजीवियों का मार्ग निर्देशन करने की आकांक्षा और हिम्मत उनमें नहीं थी । आज टामसमान के अनुसार आज संस्कृति शासन प्रबंध का एक अनिवार्य विभाग बनती जा रही है । आज संसार की नियति राजनीतिक नियति बनती जा रही है । पिछले दस वर्षों में केवल यही हुआ है । 'गोपा'[१०३] शीर्षक निबंधानुसार मैनचेस्टर गार्जियन की बात एक सही है कि मनुष्य जाति का इतिहास सैकड़ों वर्ष पुराने प्रसंग से विच्छिन्न संधिपत्रों या फौजी परवानों से नियंत्रित नहीं होता । गुलामी चाहे वह किसी भी रूसी या चीनी श्रम शिविरों के राजनीतिक बंदी गुलामों की हो या काली जातियों पर हो दोनों ही समानरूप से निन्दनीय है । संयुक्त राष्ट्र संघ सिर्फ विविध राष्ट्रों का एक सम्मिलित मंच न होकर राष्ट्रों के निहित स्वार्थों से ऊपर मनुष्यता के उज्ज्वल सपनों का विकास स्थल होना चाहिए ।

साहित्यिक :

भारती जी ने अनेक साहित्यिक निबंध भी लिखे हैं । 'प्रेमचन्द ने कहा था' शीर्षक निबंधानुसार अपने देश का सफल निर्माण करने के लिए, हमें मनोवृत्तियों और भावनाओं को संस्कार देना होगा- तभी बाहर का भी निर्माण सफल हो सकेगा। अपने को भारतीय समझना होगा इतना ही नहीं जब साहित्य या भाषा के द्वारा राष्ट्र के भावनात्मक एकीकरण का सुझाव रखा जाता है तो तुरन्त भारत के उस महान लेखक

की याद आती है जो अपने समय में हिंदी और उर्दू की एकता या प्रतीक था । वे थे प्रेमचन्द- लेकिन इतनी निर्भीकता से बोलनेवाले प्रेमचन्द एक ईमानदार लेखक थे, जो सत्य है। उसे कहना वे अपना कर्तव्य समझते थे । मुसलमानों ने हिन्दी से कोई ताल्लुक नहीं रखा और न रखना चाहते हैं । अपने को राष्ट्र से पृथक समझने की मनोवृत्ति या शेष सभी से श्रेष्ठतर समझने की बू ऐसे लोगों में पहले से थी या अंगरेजों ने बिठायी, यह दीगर सवाल है । प्रेमचन्द के सारे प्रयास इस मनोवृत्ति से टकराकर विफल हुए। लेकिन इस दिशा में भी उन्हें जो बात जब जैसी लगी उसे वैसी ही साफ रख देने में वे हिचके नहीं। उन्होंने एक टिप्पणी लिखी थी 'पहले हिन्दुस्तानी पीछे कुछ और' काश कि राजनीतिक दृष्टि के बजाय इस महान लेखक की साहस पूर्ण ईमानदारी और विवेकपूर्ण दृष्टि को हम राष्ट्र निर्माण के इस महान अभियान में प्रेरणा स्वरूप ग्रहण कर सकें। आयी-आयी बम्बई वाली (बरसात) [१०४] शीर्षक निबंध में भाषा की चर्चा की गयी है । पंजाबी साहित्यकारों की एक सभा हुई जिसमें एक महान चिन्तक के मतानुसार स्पष्ट कहा गया है कि अंगरेजी से ही पूरा प्रोत्साहन देना चाहिये, अंग्रेजी के माध्यम से ही वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली जानकर हम उन्नति कर सकते हैं और संसार के दूसरे उन्नत देशों केसमकक्ष खड़े हो सकते हैं। मसलन कुछ लोगों के मतानुसार अंगरेजी वैज्ञानिक दिशा में सम्पन्न भाषा है । रूस विज्ञान के क्षेत्र में आज संसार का सबसे उन्नत देश है । और वह अंगरेजीको अपने विज्ञान भवन की डयोढ़ी पर भी नहीं चढ़ने देता । मगर विदेशी बात को छोड़ दें, तो थोड़ी सी समस्या हमारे पिछले ज्ञान-विज्ञान के साहित्य को लेकर जरूर उठेगी । एक प्रयास यह तुरन्त करना चाहिए कि पिछले हजारों वर्ष के संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और------। आधुनिक भारतीय भाषाओं में जो अगणित पारिभाषिक शब्द हैं, उनको उसी तरह अवैध घोषित कर दिया जाना चाहिये जैसे कभी-कभी बाजार में पुरानी दुअन्नियां अवैध घोषित करके नये छापेवाले सिक्के चालू कर दिये जाते हैं ।

'आगन्तुक पखेरू' शीर्षक निबंधानुसार भारत में जो बचे खुचे अंगरेजी के जहरवाले

परवेरा है । वेदौड़-दौड़कर पूंछ नचा नचाकर उनका (श्री आल्डुअस इक्सल) स्वागत करते हैं । पंजे जोड़कर प्रार्थना करते हैं, ` ये भारतीय भाषायें हमारे जहर को खत्म किये ड डाल रही है । हे हमारे उद्धारक । हमको जहर का एक नया इंजेक्शन देते जाओ ताकि हम पुन: इन अज्ञानियों में जहर फैला सकें ।`१०५ मगर अफसोस की बात तो यह है कि जिन सत्ताओं से हम इस बात की उम्मीद करते हैं कि वे हमारे राष्ट्रीय स्वाभिमान की रक्षा करेंगी और अंगरेजीयत के जहर से हमारी चेतना को बचायेंगी । वे न सिर्फ खामोश हैं बल्कि चुप्पे चुप्पे अंगरेजी के जहर फैलानेवाले इन परवेराओं को जहर फैलाने की पूरी सुविधा देते हैं । यहां पर अंगरेजी भाषा को आगन्तुक परवेरा कहा गया है ।

`सबमिशन` शीर्षक निबंध में साहित्यकारों और प्रकाशकों की बात की गई है। `सबमिशन` अंगरेजी का एक शब्द है । शब्दकोशानुसार अर्थ होगा` विनय सहित प्रार्थना करना`। `सबमिशन` का अर्थ प्रकाशकों की दुनिया में होता है । विभिन्न प्रान्तों के शिक्षा विभागों ने पाठयक्रमों के लिए, पुस्तकालयों के लिए अपनी-अपनी किताबें भेजने का समय- सिवाय `सबमिशन` के प्रकाशक के पास और कोई रास्ता नहीं था । हिन्दी का प्रकाशन और लेखन दोनों मिशन और सेवा की दृष्टि से चाहे जो माना जाये पर आजीविका की दृष्टि से यह काफी अन्धकारपूर्ण दिशा मानी जाती थी । आज हिंदी का प्रकाशक, `सबमिशन` से मुक्त होकर इस कल्याणकारी और स्वस्थ मिशन की ओर बढ़ने का प्रयास कर रहा है । `रवीन्द्र जयन्ती का वर्ष : एक दृष्टि` शीर्षक निबंधानुसार अखिल भारतीय बंगीय परिषद ने मंच से उद्घाटन भाषण देते हुए पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपने भाषण में बड़े जोरशोर से बताया था कि टैगोर महान कवि थे। जिस समय टैगोर को नोबल पुरस्कार मिला- उस समय तक नोबल पुरस्कार स्वत: एक विवाद का विषय बन चुका था । पश्चिम की अधिकांश चर्चा एक दूसरे स्तर पर हुई कि टैगोर एशियाई थे और फिर भी उन्होंने पुरस्कार जीता । पंडित नेहरू ने अपने उस भाषण में जिस बात को बहुत जोर-शोर के साथ कहा था वह यह थी कि-`टैगोर महान कवि थे ।

क्योंकि वे अत्यन्त जन सुलभ वाणी में लिखते थे और आज हिन्दी वाले जो राष्ट्रभाषापद के लिए इतना शोर मचा रहे हैं, वे उस सरल-सहज जनभाषा में लिखना नहीं सीख पाये- जिसमें टैगोर लिख गये।"[१०६] स्थिति की उस पवित्र धारा में रवीन्द्र के यश को अस्त्र बनाने की सत्तालोलुप मैथिली धारा इस तरह घुलमिल गयी है कि दोनों को अलग करवाना कठिन प्रतीत होता है। अगर दूसरी ऐसी भूमिका बन सकती कि देश के प्रत्येक बुद्धिजीवी के अंदर जो महान कलाकार अन्तर्निहित है वह पूर्णरूप से बिना किसी कुण्ठा के विकसित हो सकता है और उसकी समुचित प्रतिष्ठा हो सकती है शायद वही रवीन्द्र-जयन्ती मनाने की सच्ची सार्थकता होगी।

`जुंग श्रद्धांजलि` शीर्षक निबंधानुसार वैज्ञानिकों और डाक्टरों के द्वारा मनुष्य के मन पर चर्चा की गई है। मध्य यूरोप के कई डाक्टरों ने वैज्ञानिक स्तर पर कहा कि मन की मूलवृत्ति `काम` है (यौनवृत्ति) और मन में चेतन, अर्द्धचेतन, और अचेतन स्तरों में यही वृत्ति मनुष्य के सारे व्यवहार चिन्तन और लेखन को प्रभावित करती है। जुंग के अनुसार यौन भावना भी एक महत्वपूर्ण वृत्ति है लेकिन वही मनुष्यता की बुनियादी वृत्ति नहीं है। मनोविश्लेषण के क्षेत्र में जुंग एक मात्र ऐसा चिन्तक था जो सबसे ज्यादा संतुलित, गहरी दृष्टिवाला, संकीर्णताओं से मुक्त और समस्त मानव संस्कृति की गहरी छानबीन करनेवाला था। उसने दो तिहाई से अधिक संसार में व्याप्त ईसाई संस्कृति के बारे में कहा था-`बहुत कम लोगों ने दिव्यता की छवि को अपनी आत्मा के अन्तराल में अनुभव किया है। जीसीस उन्हें बराबर बाहर से आकर मिला, उनके अन्दर से उभरकर नहीं। इसीलिए उनमें अन्दर वही मन:स्थिति व्याप्त है, जिसके ~~विरुद्ध~~- विरुद्ध जीसीस ने आवाज उठायी थी और जिस मन:स्थिति ने अन्त में सामूहिक रूप से जीसस को सलीब पर चढ़ा दिया।`[१०७] `जलौघमग्ना सचराचर धरा` शीर्षक निबंधानुसार मनुष्य में जब बाहर सारा जीवन दैन्य, पराजय, विकृति से आक्रान्त हो गया हो मनुष्य में मनुष्यता भी न बची हो। जो कुछ भी मानवीय है वह कुंठित ह और भ्रष्ट हो जाता है तब मनुष्य

के सामने कौन सा विकल्प रहता है ? इतिहास को देखें तो इतिहास में सिर्फ आज नहीं अनेक बार ऐसी अन्धकारमय स्थितियां आती हैं मगर संकट की गहनता और व्यापकता इतनी कभी नहीं थी जितनी कि आज है । वह कौन सा समय था जिस समय एक अन्ध अत्यन्त संवेदनशील, और महान दृष्टिवाले लेखक ने उन सारी रूढ़ियों, मानसिकता को एक अमृत वाक्य देने का संकल्प किया, एक मूल मंत्र किसी से भी न डरना, गुरु से भी नहीं, लोक से भी नही, वेद से भी नहीं ।' पुरानी प्रतिमाएं - नये प्रतिमान' [१०८] शीर्षक निबंधानुसार मध्ययुग ने नायकों की प्रतिष्ठा साहित्य में की थी। आधुनिक युग मे उन्हें निर्वासित कर दिया । आधुनिक दृष्टि ने जन-साधारण की सहज मानवीयता को अपना बुनियादी प्रतिमान माना । ऐसा समस्त साहित्य चाहे वह सोवियत रूस में लिखा गया हो, या उसके बाहर साम्यवादी साँचे में हो या गांधीवादी साँचे में वह समकालीन साहित्य होते हुए भी आधुनिक नहीं है । इसके अतिरिक्त जो कुछ है, चाहे वह मानव के नाम पर ही हो वह मानव विरोधी है । नया लेखक जो नगण्य को ही उठाना चाहता है, वह जन की कसौटी पर बिना किसी अपवाद इन सभी नायकों और दलों को मस कसता है । श्री इलाचन्द्र जोशी ने 'जहाज का पंछी' नये उपन्यास में छायावाद का काफी विरोध किया है, पर उसके संस्कारों से वे मुक्त नहीं हो पाये । 'राज्य और रंगमंच' निबंधानुसार सरकार साहित्यिक नाटकों को तभी प्रश्रय देना चाहती है पर शर्त यह है कि वे नाटक क्लिष्ट न हो, राष्ट्र के द्वारा रंगमंच के उत्थान की जो भी सुविधाएं हैं उसका सच्चा अधिकारी 'साधारण व्यक्ति' है । आधुनिक हिन्दी रंगमंच का जो भी थोड़ा बहुत इतिहास है वह उन्हीं लोगों के त्याग और अथक परिश्रम का इतिहास है ।

'अनास्था' [१०९] शीर्षकनिबंधानुसार अनास्थामयी कृतियां जो बड़ी सशक्त 'प्रभावशाली' लगती हैं पर उनमें इतनी कटुता क्षोभ और निराशा होती है कि वे कलाकार के मानवप्रेम के प्रति भी आशंकित कर देती है । प्रतिभाशाली लेखक आस्था- अनास्था के

ऐसे ही विचित्र मानसिक संघर्षों के दबाव में टूट गये हैं। लेखक हो या बुद्धिजीवी आज उसका वही दायित्व है जिसका निर्वाह अजन्ता के उस अज्ञात शिल्पी ने किया था, जनमानस के अनगढ़ लावा विस्फोट को दबाकर नहीं, वरन् उसे साधारण से साधारण ध्वनि का वाहक बनाकर उसे जनतंत्र की उस जीवनपद्धति का सच्चा प्रतीक बनाकर जिसमें बड़े से बड़ा व्यक्ति भी राष्ट्र से बड़ा नहीं है। पहले साहित्यिक के सामने एक पाठक वर्ग था, जिसके प्रति वह जिम्मेदारी महसूस करता था आज अगर वह आधुनिक है तो पाठक वर्ग की ज़रूरत ही नहीं। केवल प्रकाशक की जरूरत है। भारतीय साहित्य जगत में हिन्दी लेखक शीर्षक निबंधानुसार एक आन्दोलन कर्ता जिस स्तर से, जिस ढंग से भाषा को प्यार करता है और जिस स्तर पर रचनाकार भाषा को प्यार करता है दोनों में अक्सर फर्क पड़ जाता है। हिन्दी के प्रचारकार्य का महत्वपूर्ण अंग था उपाधियां और परीक्षाएं हिन्दी लेखक के लिए भाषा की समस्या उसकी राजनीतिक मान्यता की नहीं, रचनात्मक सम्पन्नता के विकास की अधिक रही है, ठीक वैसे ही मराठी लेखक, मराठी भाषा, तमिल लेखक, तमिल भाषा, उडिया लेखक, उडिया भाषा की सृजन की पीड़ा सभी में एक सी होती है। सृजन का उल्लास एक सा होता है।

सामाजिक निबंधों में समाज और मनुष्य का विविध प्रकार से चित्रण किया है। 'हाय हाथी! हाय हाय' शीर्षक निबंधानुसार हिन्दुस्तान में पाये जानेवाले तमाम जानवरों में हाथी एक सुडौल, खूबसूरत और आकर्षक जानवर होता है। समाज के कई अज्ञानी लोग उसे बेडौल कहकर हंसते हैं। मोटापे या मूर्खता का प्रतीक भी उसे मानते हैं। मगर जो ~~कब~~ ज्ञानी है उन्होंने हमेशा ज्ञान के परम तत्व को समझाने के लिए हाथी की उपमा का सहारा लिया है। इतना ही नहीं- हाथी के चारों ओर अन्धों को खड़ाकर उसके दृष्टान्त से ब्रह्म का स्वरूप स्पष्ट करने की चेष्टा की है। 'आधी रात रेल की सीटी' ११० शीर्षक निबंध में निबंधकार ने प्रकृति को वर्णित करते हुए प्रकृति और मनुष्य का एक ही क्रम बताया है। ठंडी नंगी छत पर फैले-फैले आसमान के नीचे बेमतलब छज्जे के

पार पीपल की खामोश टहनियां नीले आकाश के परदे पर काले छायाचित्रों की तरह खिंची हुई है। जैसे आधी रात जाल फेंके जाने पर जल की सतह--कांप उठती है,वैसे ही रात का फैलाव, रात की खामोशी, रात का अंधियारा कांपने लगता है, ठीक वैसे ही जिन्दगी के कामों का सिलसिला ही नहीं टूटता, लगता है जैसे पीछे कोई गुजरा हुआ अतीत नहीं है और आगे कोई भविष्य नहीं- सिर्फ वर्तमान है जो बहुत सुखद है। वह एक कहानी और उसके अनेक परिशिष्ट' शीर्षक निबंधानुसार कहानी में कहानीकार अपनी कहानी के द्वारा जो परिस्थितियां, घटनाएं और कथाक्रम को पेश करता है वह केवल उतना ही नहीं है जितना दीखता है। उसके पीछे बहुत कुछ है। पर कहानियां जीवन के बुनियादी सवाल को कैसे और कहां उठाती हैं ? कैसे संवेदनाएं एक बहुत बड़े मौलिक प्रश्न के सन्दर्भ में गहरे अर्थवाली हो उठती है यह देख सकते हैं। वैष्णवता के संस्कार और जीसस की कहानी ने पहलीबार यह बताया कि जीवन में बाहर भी रास्ता तभी मिलता है जब अन्दर का मन का रास्ता प्रशस्त होना शुरू हो। एक ऐसा ही ऐतिहासिक क्षण था आज से दो हजार वर्ष पहले जब उस बहुत बड़े मुकदमे के बाद जीसस के विरोधियों ने जीसस को फांसी पर चढ़ाने का फैसला किया था। जिस आदमी ने अंधों को आंखें दी, भूखों को रोटी, अकेले को आश्रय दिया था। बाद में शायद ईसाई चिन्तकों ने एक कारण बताया कि सृष्टि के आदि में वर्णित फल चखकर मनुष्य ने आदिम पाप किया और यह सारी अकारण यंत्रणा वह दण्ड है, जो मनुष्य जाति को आदिम पाप के लिए भुगतना पड़ रहा है। 'एक छोटी खबर : एक बड़ा सन्दर्भ' शीर्षक निबंधानुसार एक साधारण सामाजिक प्रसंग का उदाहरण देकर निबंधकार ने बताया है कि क्या आदमीयत सिर्फ रूस और अमेरिका में झगड़े और ~~सलह~~ सुलह के सहारे ही मुरझाती या पनपती चल रही है ? अगर अपनी और अपने चारों ओर के लोगों की जिन्दगी को ध्यान से देखें तो वे तमाम चीजें जो हमें जीने का अर्थ देती है, हमारे मन में रस और प्रेरणा का संचार करती हैं, जो हमें मनुष्य होने का गौरव देती है, उनमें स्वार्थपूर्ण राजनीति कितनी गौण है और नेकी, ममता, आत्मत्याग,

एक दूसरे के लिए कुछ करने की मानवी भावनाएं कितनी प्रमुख । एक इनसानी दृष्टिकोण था जो आज के जमाने में बदल गया है और चारों ओर विरोधाभास छा गया है । उन्होंने मैं के माध्यम से खत भी लिखे हैं, खत का उत्तर भी 'मैं' के रूप में ही दिया है। 'एक खत'[१११] ऐसा ही निबंध है । यहां बम्बई में भी तीसरे पहर का सूरज ढलता है और धूप खिड़की में से तिरछे होकर गिरती है । एक अलसायेपन सा सब पर छाने लगता है अलसायेपन को मैं मन की लौटी हुई मस्ती समझ रहा था- वह तो बुखार की भूमिका थी । तुम्हारा मन कभी-कभी इसकदर उदास हो जाता है यह स्वाभाविक ही तो है । मैं रोशनी के एक कण के लिए किस कदर अकेले लड़ रहा हूं सिवा तुम्हारे सबने छोड़ दिया है हमारा प्रभु हमें भूला नहीं । आदमी की सामर्थ्य में यह होता ही नहीं कि वह जिन्दगी को दो विरोधी तरीकों से जिये । अपने को भुठलाकर हम दुनिया का कोई भला कर सकते हैं यह केवल भ्रान्ति है । यहां पर निबंधकार अपनी अर्थात् मनुष्य की 'ताक़त' से कहते हैं कि इस तरह उदास न रहकर मेरी ताकत तू इतना क्यों नहीं समझती कि हम जिस चीज के लिए लड़ रहे हैं उसके अर्थ बहुत गहरे हैं- व्यापक हैं ।

'भूत के साथ एक रात'[११२] निबंधानुसार जनवादी डिक्टेटरों का शासन हो या वैधानिक राजघरानों का लेकिन उपाधियां और पुरस्कार आदि हर व्यवस्था में अपनी जगह बड़ा महत्व रखती है । आज भी उपाधियां देने और लेने की प्रवृत्ति उसी सैकड़ों साल पुरानी मनोवृत्ति की काया है । उपाधियां और सम्मान न तो उनके खेतों में नयी फसल उगा सकती हैं। वे सदियों से नयी जमीनें तोड़कर इतिहास को आगे नयी दिशा में बढ़ाते गये हैं । त्यों-त्यों पुराने खण्डहर और भी पुराने शक्तिहीन और जर्जर होते गये । 'व्यक्ति पूजा के लिए' शीर्षक निबंध में राजकीय आडम्बर को व्यक्तिपूजा को बढ़ाने में सहायक कहा गया ~~कै-नहीं~~ है । राजकीय आडम्बर और उन पर आधारित व्यक्तिपूजा की परंपराएं जनतंत्र की नहीं हैं, हमारे देश की पुरानी आध्यात्मिक परंपरा भी नहीं वरन् एक पिछड़े हुए उपनिवेशवाद, और टूटते हुए सामन्तवाद की देन है । यहां

पर प्रश्न किसी एक व्यक्ति या दल का नहीं वरन् इसका है कि व्यक्ति पूजा इतनी महत्वपूर्ण न बन जाये कि उसके आगे व्यवस्था , विवेक और विचार अपने को शक्तिहीन महसूस करने लगे ।

जीवन चरितात्मक :

'यामिनीराय'[११३] शीर्षक निबंध में यामिनीराय का चित्रण किया गया है। वे बंगाल के चित्रकार थे उन्होंने आधुनिक भारतीय चित्रकला को एक बिल्कुल नयी - क्रान्तिकारी दिशा प्रदान की, उनके अनुसार ग्रामीणों के बीच एक विशिष्ट चित्रकला शैली जीवित है, जो सहज है, उपर से आरोपित नहीं और शैली की दृष्टि से उनमें वे सारे तत्व और संभावनाएं मौजूद हैं, जिनकी नकल के लिए बम्बई का कलाक्षेत्र पश्चिम की ओर दौडता है । वे लगभग ७५साल के हो गये हैं । सन् १८०३ में १६ वर्ष की उम्र में कलकत्ता कला स्कूल में भर्ती हुए, उन्होंने एक स्टुडियो बनाया जिसमें कतिपय शिष्य रखे जो कमोवेश उसी शैली में यामिनीराय के चित्रों की प्रतिकृतियां बाजार के लिये तैयार करने लगे । केवल शैली कलाकृति को कलाकृति नहीं बना सकती। उसकेपीछे हर रचनाकार की अपनी पूरी अनुभूति रहनी चाहिए। अपनी ही मौत पर' शीर्षक निबंध करे में निबंधकार ने स्वयं का चित्रण किया है । उन्होंने अपनी मौत की बड़ी-बड़ी रोमैण्टिक कल्पनाएं कर रखी थी। लेकिन उनकी मौत उसी के शहर में, उसी के मुहल्ले में, उसी के घर में, अपने ही कमरे में, अपने ही बिस्तर पर हुई थी। उनके प्रणाय जीवन के रजिस्टर में कोई ठीक समय पर हाजिर होने नहीं आया । जहां आदमी को न शुद्ध घी मिलता है, न दूध वहां शायद आदमी को सबसे ज्यादा ताकत देनेवाली चीज अहंकारहीन, गुस्सा और स्वार्थहीन नफरत है और भारती उसका सेवन बिलकुल काडलिवर आयल या मकरध्वज की तरह करता था । उनकी दो बिमारियां स्पष्ट थी, एक तो उनको पढ़ने के दौरे आते थे, दूसरी बिमारी टहलने की थी। उनसे १५ मिनट भी शांत नहीं बैठा जाता था । एक पत्र में उनकी एक पुरानी एलार्म घड़ी ने लिखा था, 'मैं जड़ मशीन हूं तो क्या भारती की मौत के पीछे जो ट्रेजडी है वह मैं पहचानती हूं ।

'विचारक का गुस्सा' शीर्षक निबंधानुसार एक मशहूर विचारक था जो बिलकुल एकान्त में रहता था। किसी का आना-जाना भी उसे नागवार गुजरता था। जब विश्वविजेता सिकंदर ने उससे मिलने और उसका सम्मान करने की इच्छा प्रकट की तो भी उसने ना कर दी। 'विश्वविजयी सिकंदर भगवान के वास्ते सामने से हट जाये और मुझे शांति से धूप खा लेने दे ?' कहकर उनकी पलकें बंद हो गईं और वे चिन्तन में लीन हो गये। इस तरह प्रोफेसर हाल्डेन जो विश्व विख्यात वैज्ञानिक दार्शनिक थे एक दिन उन्होंने विदेश से आनेवाले दो चार अतिथियों को घर पर आमंत्रित किया। वे अतिथि नहीं आये और बाद में पता चला कि वे जिस देश से आये थे- उस देश के दूतावास ने उन अतिथियों को सलाह दी थी-हाल्डेन साहब के यहां न जायें तब यह बात उनको अपमानजनक लगी और उन्होंने सात दिन का अनशन घोषित कर दिया। यह उनका सैद्धांतिक अनशन था जो शत्रु का हृदय परिवर्तन करता है। 'मैं चांद के कलंक को प्रणाम करता हूं'[११४] शीर्षक निबंधानुसार भारतेंदु जी का चित्रण हुआ है। १९ वीं शती के उत्तरार्द्ध की जड़ता, मूर्च्छना, अंधियारे और अज्ञान को चीरकर भारतेन्दु जी का महान व्यक्तित्व शरदी पूनो के चांद की तरह चमक उठा था। उनका भोग-विलास समाज की तत्कालीन नैतिक व्यवस्था और परिवार व्यवस्था के विरुद्ध एक तीखा विद्रोह था। उनके जीवन में आनेवाली स्त्रियों के प्रति उनके मन में एक सच्ची सहानुभूति, पारस्परिक सौहार्द और एक-दूसरे के मन की पीड़ा की अनुभूति थी। ये सब उनकी मुख्यतम विशेषताएं हैं। 'आईखमैन को सजा लेकिन' शीर्षक निबंधानुसार कटघरे में अपराधी के रूप में इन हजारों मौतों का अपराधी करार देकर जो व्यक्ति खड़ा कर दिया गया है जिसकी ओर लाखों घृणा की निगाहें उठती हैं वह आईखमैन कौन है ? आईखमैन स्वयं इस मृत्यु दण्ड का जिम्मेदार है या नहीं इसका फैसला तो कानून करेगा मगर उसका कहना है कि वह एक आज्ञाकारी कर्मचारी था और जब व्यवस्था ने उसे आज्ञा दी कि एक पूरी की पूरी जाति को नाबूद कर दो तो उसने इस हुक्म को पूरा करने का हरसमय तरीका खोज निकाला। इसके अतिरिक्त कहा गया है कि आइखमैन एक गलत लक्ष्य के लिए नरसंहार करता था। इतिहास की चेतावनी को सही न समझ पाने पर जो व्यवस्था एक ओर उसे अपराधी मान रही है, उसी ने तो अचेतन में आइखमैन को अपना आध्यात्मिक गुरु मान लिया है।

निराला जी का चित्रण -सन्तमुद क्या रोइए`[११५] शीर्षक निबंध में किया गया है। निराला जी अंत में अंदर से बहुत कुछ टूट गये थे। ये सच है। दबी जबान कहीं कहीं यह भी सुन पड़ा कि उनका उद्धत अहम् काश कुछ कम उद्यत होता। काश कि चारों तरफ कोई एक भी साहस होता तो न या निराला जी अंत में इस तरह अंतर्मुखी होकर टूट जाते। अगर निराला का अहम् इतना समझौता विहीन, बेलौस, उद्यत न होता तो आज हम सबका अहम् कुंठित होकर पथभ्रष्ट हो चुका होता। निराला जी ने हिन्दी के लिए सब कुछ दान कर दिया। गंगातट पर नंगे बदन, आंख मूंदे, नीम की छाया में, लेकिन शिविर में वापस नहीं लौटे। वे केवल राजभाषा के लिए ही नहीं-वरन् उस भाषा के लिए लड़े थे जिसमें सच्चाई व्यक्त की जा सके। वे कवि थे-उनकी अनुभूति के लिए जो शब्द जरूरी था उसके लिए उन्होंने बड़े-से- बड़े नेता, आलोचक या किसी की सहमति की परवाह नहीं की।

भाषा शैली :

कन्हैयालाल मिश्र `प्रभाकर` के निबंधों में हास्य, व्यंग्य, मधुरता, सरसता, सरलता, स्वाभाविकता, आत्म व्यंजना, वैयक्तिकत्व, वेदना आदि का सुन्दर सामंजस्य मिलता है। जो अन्य निबंधकारों में नहीं है। वैयक्तिक निबंधों में उनकी लेखनी प्रौढ़ है। निबंध में वे `मैं` के द्वारा अपने विचारों की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति करते हैं। इसके अतिरिक्त व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप उनके निबंधों में मिलती है। किसी भी विषय का प्रारंभ वे रोचक शैली में करते हैं। उर्दू, फारसी, अंग्रेजी, साहित्यिक, ग्रामीण सभी प्रकार की शब्दावली का प्रयोग वे अपने निबंधों में करते हैं। वार्तालाप, प्रश्नात्मक, आत्मविश्लेषण, वर्णन-दिग्दर्शन आदि अनेक शैलियों में वे अपनी बात इस प्रकार करते हैं कि पाठक इससे ऊब नहीं सकता। कहावतों, मुहावरों का प्रयोग हास्य-व्यंग्य डाट-फटकार जैसे भाव इनके निबंधों में मिलते हैं।

गुलाबराय जी ने निबंधों के द्वारा अपना चिन्तन, अपनी शैली तथा अपनी

सहानुभूति प्रदान की है । उनका निबंध संग्रह 'मेरे निबंध जीवन और जगत' हास्य-विनोद से भरा हुआ है । हास्य-व्यंग्य का चटपटा पुट उनके गंभीर विवेचनों को भी रोचक बना देता है । उनके निबंध हास्य-व्यंग्य विदग्धतापूर्ण ही होते हैं । इसके अतिरिक्त गुलाबराय जी की आत्मीयता एवं विनोदपूर्ण शैली निबंधों को रोचक एवं सुपाच्य बना देती है । उनके निबंधों में डाक्टरों, कम्यूनिस्टों, तथा बीमा एजेण्टों पर हल्के व्यंग्य हैं । उनकी शैली में मुहावरे, लोकोक्तियां एवं रामायण आदि के उद्धरणों के अतिरिक्त प्राप्त वचनों का पर्याप्त उपयोग है । श्री विजयशंकर मल्ल के कथनानुसार विभिन्न वस्तुओं के सम्बंध में लेखक ने कतिपय नयी संवेदनाओं को व्यंजित किया है । गुलाबराय जी की विनोदमयी शैली की अपनी कुछ विशेषताएं हैं । वे नये पर्यवेक्षण , सरस, सामाजिक, आलोचना प्रसंग, मर्मत्व और कहीं-कहीं लक्षण के सहारे हास्य उत्पन्न करते हैं ।[११६]

वियोगी हरि के निबंधों में हमें उनकी आत्माभिव्यंजना, भावों, विचारों की जीवन अनुभूतियां, हास्य-व्यंग्य की योजना, नाटकीय कथोपकथन एवं शैली की रोचकता तथा कहीं-कहीं भाषा की कृत्रिमता परिलक्षित होती है । संस्कृत प्रधान शैली होने के कारण सानुप्रासकता दिखाई पड़ती है । इसके अतिरिक्त उनकी अलंकरण प्रधान शैली अतिशयता के कारण निकट है । साधारण व्यक्ति अर्थ निकालने में असमर्थ है । भावात्मक निबंध लिखनेवाले व्यक्तित्वप्रधान निबंधकार श्री वियोगी हरि जी की शैली अपने ढंग की अलग है । समासों के कारण उनकी भाषा कहीं-कहीं दुरूह भी हो गयी है । इनमें ममता और आत्मियता के साथ हलका व्यंग्य भी है । उनके निबंधों को पढ़ने से लगता है जैसे वे किसी आत्मीय को उसके कर्तव्य के प्रति उत्साहित करते हैं । यह सब गुण उनके निबंधों को आत्मीयता प्रदान करते हैं। इसमें उर्दू शब्दों की कहीं भी उपेक्षा नहीं की गई है और संस्कृत शब्दावली का प्रयोग किया गया है । जहां संस्कृत प्रधान भाषा का प्रयोग नहीं है वहां भाषा की मधुरता एवं सरलता दर्शनीय है । उन्होंने ऐसी जीवंत चित्रात्मक शैली का प्रयोग निबंधों में किया है कि सारा वातावरण हमारे

सामने स्पष्ट हो जाता है । परिचयात्मक शैली भी अपनायी है । कभी-कभी विस्मयादि-बोधक शब्दों का प्रयोग करके तरंग शैली का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया है ।

इन्द्रनाथ मदान के निबंधों में उनकी शैली भी भाषा भावों के अनुकूल प्रासादिक गुणों से युक्त है । न व्यर्थ तार्किकता उलझाव है न रहस्यात्मकता की गंभीरता, शान्त एवं प्रासादिक गुणों से सम्पन्न शैली में लेखक अपने अंतर्भावों को आत्मीयता से व्यक्त करता चलता है । आत्मीयता के साथ एकान्त क्षणों की बातचीत, आत्मीय से अंतरंग भाव व्यक्त करने की सहजता, सरलता, आतुरता, तथा रुचि-अरुचि का स्पष्टीकरण मिलता है । स्पष्ट सरल शब्दों में स्पष्ट भाव व्यंजन लेखक की सफलता मानी जाती है। इनके निबंधों में भावुकता तथा अनुभूति के क्षण सजग और जीवन्त हैं । निबंधों में न तो ठहाके का हास्य है और न हृदयबेधक व्यंग्य । उनके व्यंग्य के छींटे मिलेंगे जो सन्दर्भ एवं भावों को रोचकता के साथ तीव्रता एवं नुकीलापन प्रदान करते हैं । बड़े ही शिष्ट व्यंग्यों की योजना है उनके यह व्यंग्य साहित्य क्षेत्र का भी हो सकता है, प्रणय प्रसंग और गृहस्थी का भी । यह व्यंग्य कोरे व्यंग्य न होकर आज के जीवन के का खोखलापन उघाड़ते हैं और सत्य का विश्लेषण भी करते हैं । इसके अतिरिक्त उनके निबंधों में न तो संस्कृत निष्ठ सामासिकता है न दार्शनिकता और तार्किकता और न ही विद्वता प्रदर्शित करने की चेष्टा भी । गद्य को जबरदस्ती काव्यात्मक रूप देने का न तो सानुप्रासिक प्रयास है न भावों में रोमाण्टिकता । उनके निबंधों में न तो उर्दू- फारसी का दबाव है न ही संस्कृत निष्ठता का तनाव । सीधी, सरल भाषा, सामान्य परिचित शब्दावली और बिना उलझे वाक्य । खड़ी बोली हिन्दी की प्रचलित शब्दावली इन निबंधों में प्रमुख है ।

रामवृक्ष बेनीपुरी जी ने गेहूं और गुलाब संस्करण में प्रतीकवादी शैली का प्रयोग किया है । इस संग्रह में प्रायः प्रतिकात्मक निबंध ही संकलित हुए हैं । उनके संस्मरण में भावों की उमंग व भाषा का संयत स्वरूप एक मार्मिक भाव पैदा करता है। यद्यपि

उनकी शैली में भावों का आवेग घर कर गया है। वातावरण की दृष्टि में बेनीपुरी जी के भावों की तीव्रता एवं मार्मिकता गद्य काव्य के निकट आ जाती है। जिसमें कल्पनालोक भी दृष्टिगोचर होता है। इसके अतिरिक्त बलदेव सिंह नामक रेखाचित्र में बलदेव सिंह का शब्दचित्र देखिये-`सिर चूर चूर जैसे मुर्ता बना दिया गया हो। खून और धूल से सराबोर? जिस ललाट से तेज बरसता उसी पर मक्खियां भिन्ना रही। एक आंख नीचे धंस गयी थी----`[१२७] उनकी भाषा सरल, मधुर एवं आत्मीयता के गुण से ओतप्रोत है। वाक्य अत्यन्त छोटे, पर पूर्ण। उनके निबंधों में प्रासाद और धारा शैली का प्रयोग किया गया है। उर्दू-फारसी तथा अंग्रेजी शब्द अधिकांशत: वही हैं जो सबकी पहुंच के हैं। अपनी साहित्यिक प्रतिभा से उन्होंने भाषा को क्लिष्ट नहीं होने दिया। भाषा में व्यंग्य- विनोद बड़ा सरस पर मनोरंजक है जिससे चुभन और गुदगुदी की अनुभूति होती है। इनकी भाषा में ग्रामीण शब्दावली मिलती है। उसी प्रकार ग्रामीण मुहावरे भी मिलेंगे। जब बेनीपुरी जी भावों की तीव्रता में मुग्ध हो जाते हैं तो उस भावाविभोर अवस्था में उद्भूत भाषा में आत्मीयता की विशिष्ट छाप मिलती है। उस भाषा में हमें उनकी विक्षेप और प्रलाप शैली के दर्शन होते हैं। वे किसी विशिष्ट वस्तु को लक्ष्य करके पागलों का सा प्रलाप करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक असह्य कारुणिक व्यथा से व्यथित होकर एकदम रो पड़ता है परन्तु कर्तव्य का ख्याल कर पुन: संभल जाता है। यही उनकी प्रलाप शैली की झलक मिल जाती हैं। उनमें भावप्रवणता, आत्मीयता, व्यंग्य-विनोद सामान्य भाषा के साथ राष्ट्रीयता भी मिलती है।

शांतिप्रिय द्विवेदी जी के निबंधों में हमें प्राय: तीन प्रकार की निबंध शैलियां देखने को मिलती है। भावात्मक, विवेचनात्मक और व्यंगात्मक। वे अत्यन्त भावुक क्षणों में जब जीवन जगत पर अपनी प्रतिक्रियायें व्यक्त करते हैं अपने जीवन पर दृष्टिपात कर अपनी अनुभूतियां अंकित करते हैं वहां भावनात्मक आवेग और अन्तर्मुखता के साथ भावात्मक शैली के दर्शन होते हैं। इसी प्रकार जब वे साहित्यिक कृतियों का, कृतिकारों

का विश्लेषण करते हैं अथवा सामाजिक, राजनैतिक,साहित्यिक ,धार्मिक समस्याओं पर विचार व्यक्त करते हैं तब उनके साहित्यिक विश्लेषक विवेचक के रूप में दर्शन होते हैं। और जब मौज में आकर व्यंग्यात्मक ढंग से अपनी बात रखते हैं तब उनकी सहजता के साथ शिष्ट आघात का आभास होता है ऐसे प्रसंगों में उर्दू, अंग्रेजी के शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। उनकी भाषा शैली स्वत: की है। आत्मदृष्टि एवं आत्मानुभूतियों से अलग उनके निबंधों का मूल्यांकन संभव नहीं। इसके अतिरिक्त रवीन्द्रनाथ की संगीतपूर्ण शैली और पंत जी की चित्रमयी भाषा उनके गद्य का प्राण है। द्विवेदी जी की भाषा का रूप सामान्यत: काव्यात्मक तथा कोमलकान्त पदावली से युक्त है। प्रभावोत्पादकता प्रधान गुण है। निबंधों के प्रस्तुतीकरण के लिए उन्होंने भिन्न-भिन्न पद्धतियों का प्रयोग किया है। चित्त और चिन्तन के निबंध औपन्यासिक शैली में लिखे गए हैं। कुछ विचारात्मक निबंधों का प्रारंभ भी वे भावात्मक शैली में या प्रतीक रूप में करते हैं। यह नि:संकोच रूप से कहा जा सकता है कि द्विवेदी जी शैलीकार निबंधकार थे। उन्होंने अपने निबंधों द्वारा थोड़े ही विषयों को स्पर्श किया, पर जिन्हें किया उन्हें सजीव बना दिया। वे गांधीवाद से आगे नहीं जा सके- यह सत्य है पर गांधीवाद पर के विश्वास ने ही उनके निबंधों में सौहार्दता भर दी।

विवेकीराय का लिखा हुआ निबंध संग्रह `फिर बैतलवा डाल पर `छोटे-छोटे निबंधों का संग्रह है। जिसमें सरल, सरस, प्रसन्न शैली में ललित गद्य लेखन का प्रवाह-पूर्ण, प्रभावोत्पादक, तथा प्रसाद गुण सम्पन्न रूप देखा जा सकता है। उनकी प्राय: सभी कृतियां किसी न किसी व्यंग्य और विनोद की चेष्टा से गर्भित है। यह व्यंग्य विनोदेन चेष्टा प्रत्यक्षतया किसी अन्य के उपर प्रहार करके स्फुट नहीं होती-बल्कि कथाकार अपने को ही समसामयिक व्यक्तियों , संस्थाओं और स्थितियों में इस प्रकार विनियुक्त करता है कि उपहास का केन्द्र वह स्वयं बन जाता है। अर्थात् वह भोक्तारूप में उपस्थित होता है। शिल्प की दृष्टि से सभी रचनाओं का रूप भिन्नतायुक्त है, व्यंग्य के शिकार नेता, अधिकारी, रईस, विधायक, अध्यापक,छात्र,कवि,पेटू,कंजूस,निठ्ठले अन्धभक्त आदि अनेक हैं। लेखक जहां गांवों की मलिनता का न जुगुप्साप्रेरक उत्तेजक चित्रण

करता है वहीं पर गांवों के अक्षुण्ण प्राकृतिक वैभव का भी बड़ी सार्थक प्रसन्न भाषा में अंकन कर सकता है । छोटे-छोटे क वाक्य कथ्य के रेशे-रेशे को अलग करने वाले साकांक्ष वाक्य भाषा की एक ऐसी भंगिमा सिद्ध करते हैं। जो इन गद्य कृतियों को स्थान-स्थान पर बड़ी ताजगी और निर्धूम आभा प्रदान करती है ।

शैली की दृष्टि से भारती जी के निबंध सफल हैं । वे भाषा के सम्बंध में शुद्धता के समर्थक नहीं हैं । उर्दू को वे हिन्दी की शैली मानते थे । उन्होंने उर्दू शब्दों का प्रयोग काफी किया है । कुछ कठिन उर्दू शब्द उनके निबंधों में आ गये हैं जैसे- मद्दाह,जखीरा, जरख आदि । कहीं-कहीं हिन्दी के साथ उर्दू का अनावश्यक प्रयोग भी है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अनेक अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी किया है जैसे कैक्टस, पोस्टमोर्टम, आदि । अंग्रेजी के प्रभाव के कारण `बुद्ध` को `बुद्धा` कहने की प्रवृत्ति की उन्होंने निंदा की है । उनके निबंधों में यथाप्रसंग हास्य-व्यंग्य और विनोद के प्रयोग हैं । इनके कारण निबंधों में सरसता आ गई है । ढेले पर हिमालय` संकलन में अनेक व्यंग्यपूर्ण निबंध हैं । उनकी निबंध शैली में उदाहरण के द्वारा अपने कथन को पुष्ट करने की प्रवृत्ति भी है । उनके `कहनी अनकहनी` संकलन का गंभीर एवं गहन चिंतन तथा तीखा व्यंग्य विनोद मुख्य वैशिष्टता है । श्री भगवतशरण उपाध्याय जी ने संस्कृत की खण्डन-मंडन शैली तथा अधिकरण पद्धति पर प्राय: निबंध रचना की है । उपाध्याय जी ने आत्मपरक निबंधों की अपेक्षा `रिपोर्ताज` में अपनी निजता को अधिक स्पष्ट किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने प्राचीन संस्कृति के प्रतीकों का प्रयोग किया है । संस्कृत के प्राचीन पात्रों को भी अपनाया है । उनका भारतीय संस्कृति का ज्ञान भी उनके निबंधों में प्रदर्शित है ।

श्री जगदीशचन्द्र माथुर का निबंध संग्रह `दस तसवीरें` हैं जिनमें उन्होंने उच्चकोटि के चरित लेख प्रस्तुत किए हैं । इसके अतिरिक्त `बोलते क्षण` निबंध संग्रह में उन्होंने गर्वजन

सुलभ भाषा का प्रयोग किया है । इसे पढ़ने पर पाठक को गद्य काव्य का सा आनन्द लगता है। उनके चरित लेखों की शैली भी प्राय: काव्य के स्तर पर विचरती है। वे ललित गद्य को काव्य के का अंग मानते हैं। उनके मत से जो गद्य रुचिकर हो, अलंकार संपन्न हो, रसानुभूति कराए - वह काव्य की कोटि में आता है और जानकारी बढ़ाने के उद्देश्य को पूरी करता है । पिछले दिनों हिन्दी गद्य की प्रेषणीयता बढ़ी है किन्तु रचना में न्यूनता आई जान पड़ती है। इन लेखों की रूपसज्जा हृदयग्राही और अनुरंजक है ऐसा कम से कम कहना है। मुझे भी इन रचनाओं शिल्प, सौष्ठव और मनोहारिता पर उतना ही गौरव है जितना किसी कारीगर को अपनी साध्य कलाकृति पर होता है ।'[११८] शिवप्रसाद सिंह के कुछ निबंध कथा पद्धति में कुछ और कुछ चित्रात्मक रिपोर्ताज की पद्धति में लि गये हैं। उनके कई निबंध ऐसे हैं जो संस्मरणात्मक पद्धति के होते हुए भी चरित लेख के अधिक निकट लगते हैं। इनके और कई निबंध डायरी पद्धति तथा पत्रात्मक पद्धति के ललित निबंध भी हैं। उनके निबंधों की भाषा बड़ी ही सुन्दर है जो उनके निबंधों में जीवन्तता ला देती है । आचार्य ललिताप्रसाद सुकुल द्वारा लिखित निबंध संग्रह है इनसे'। 'सुकुल जी ने ललित निबंध प्रस्तुत किए हैं । व्यक्तियों से अथवा व्यक्ति से सम्बंधित कहा गया है ।

उपसंहार

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि हिन्दी में ललित निबंधों की विकास परम्परा पर्याप्त समृद्ध और गतिशील है । श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' से लेकर धर्मवीर भारती तक के ललित निबंधकारों के ललित निबंधों में अनेक नवीन शैलियों का प्रादुर्भाव हुआ । इन्होंने निबंधों से आरंभ करके अनेक सृजनात्मक गद्य-विधाएं जैसे कि रेखाचित्र, संस्मरण, डायरी, रिपोर्ताज, यात्रा-संस्मरण, शब्दचित्र आदि रूपों का विकास किया। ये सृजनात्मक रूप वास्तविक और यथार्थ विवरणों को ललित सन साहित्य की कोटि तक पहुंचा देते हैं। भारतीय परिवेश में इसका विकास सर्वथा भिन्न प्रकार से हुआ, किन्तु हिन्दी के व्यक्ति व्यंजक निबंधों की अपनी मौलिक परम्पराएं हैं जो हिन्दी की प्रकृति के स्वतंत्र विकास का प्रमाण देती हैं।

सन्दर्भ- ग्रन्थ

१-	माटी हो गई सोना	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	पृ० ३६
२-	वही-	,,	पृ० ६६
३-	दीप जले शंख बजे	,,	पृ० २६
४-	बाजे पायलिया के घुंघरू	,,	पृ० २०६
५-	वही-	,,	पृ० ५
६-	दीप जले शंख बजे	,,	पृ० ६
७-	बाजे पायलिया के घुंघरू	,,	पृ० १३८
८-	दीप जले शंख बजे	,,	पृ० ५
६-	बाजे पायलिया के ~~क~~ घुंघरू	,,	पृ० १४६
१०-	वही-	,,	पृ० १५३
११-	वही-	,,	पृ० ८२
१२-	वही-	,,	पृ० २५
१३-	वही-	,,	पृ० १८३
१४-	माटी हो गई सोना	,,	पृ० ६१
१५-	वही-	,,	पृ० ८४
१६-	बाजे पायलिया के घुंघरू	,,	पृ० ७६
१७-	वही-	,,	पृ० ३१
१८-	वही-	,,	पृ० १०७
१६-	दीप जले शंख बजे	,,	पृ० १८०
२०-	वही-	,,	पृ० १३६
२१-	वही-	,,	पृ० १६४
२२-	माटी हो गई सोना	,,	पृ० २०४
२३-	माटी की मूरतें	श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी	पृ० १
२४-	वही-	,,	पृ० २८

२५-	मील के पत्थर	श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी	पृ० ५५
२६-	वही-	,,	पृ० १०८
२७-	वही-	,,	पृ० २४
२८-	वही-	,,	पृ० ४५
२९-	वही-	,,	पृ० ३३
३०-	,,वही-	,,	पृ० ७३
३१-	वही-	,,	पृ० ६
३२-	मेरे निबंध जीवन और जगत्	डा० गुलाबराय	पृ० १
३३-	वही-	,,	पृ० १६
३४-	वही-	,,	पृ० ३२
३५-	फिर निराशा क्यों	,,	पृ० २८
३६-	वही-	,,	पृ० ३५
३७-	वही-	,,	पृ० ३९
३८-	वही-	,,	पृ० ४६
३९-	वही-	,,	पृ० ५०
४०-	मेरे निबंध जीवन और जगत	,,	पृ० १७५
४१-	वही-	,,	पृ० १८७
४२-	वही-	,,	पृ० १५७
४३-	वही-	,,	पृ० १६०
४४-	चित्र और चिन्तन	शांतिप्रिय द्विवेदी	पृ० ३
४५-	वही-	,,	पृ० ६
४६-	वही-	,,	पृ० १५
४७-	वही-	,,	पृ० २०
४८-	वही-	,,	पृ० २५
४९-	वही-	,,	पृ० २८
५०-	वही-	,,	पृ० ३६

५१-	चित्र और चिंतन	शांतिप्रिय द्विवेदी	पृ० ४२
५२-	वही-	,,	पृ० ४६
५३-	वही-	,,	पृ० ५१
५४-	वही-	,,	पृ० ६२
५५-	वही-	,,	पृ० ७०
५६-	वही-	,,	पृ० ७५
५७-	वही-	मृ० ,,	पृ० ८२
५८-	इनसे	आचार्य ललिताप्रसाद सुकुल	पृ० ११
५९-	वही-	,,	पृ० २३
६०-	वही-	,,	पृ० २८
६१-	वही-	,,	पृ० ३३
६२-	वही-	,,	पृ० ३७
६३-	वही-	,,	पृ० ४२
६४-	वही-	,,	पृ० ४६
६५-	वही-	,,	पृ० ४९
६६-	वही-	,,	पृ० ५६
६७-	वही-	,,	पृ० ६१
६८-	वही-	,,	पृ० ६७
६९-	वही-	,,	पृ० ७३
७०-	वही-	,,	पृ० ७६
७१-	वही-	,,	पृ० ८०
७२-	वही-	,,	पृ० ८४
७३-	वही-	,,	पृ० ८५

७४- 'चतुर्दिक' राजकमल प्रकाशन- दिल्ली प्रथम सं० १९७२ ई०

७५-	दस तसवीरें	डा० जगदीशचन्द्र माथुर	पृ० १७
७६-	वही-	,,	पृ० ३७
७७-	वही-	,,	पृ० ४६
७८-	वही-	,,	पृ० ६१
७६-	वही-	,,	पृ० ८१
८०-	वही-	,,	पृ० ६१
८१-	वही-	,,	पृ० १०२
८२-	वही-	,,	पृ० ११७
८३-	वही-	,,	पृ० १२६
८४-	वही-	,,	पृ० १३७
८५-	सांस्कृतिक निबंध	भगवतशरण उपाध्याय	पृ० ११
८६-	वही-	,,	पृ० २४
८७-	वही-	,,	पृ० ३७
८८-	वही-	,,	पृ० १११
८६-	फिर बैतलवा डाल पर	विवेकीराय	पृ० १७
६०-	वही-	,,	पृ० २४
६१-	वही-	,,	पृ० ६८
६२-	वही-	,,	पृ० ८८
६३-	वही-	,,	पृ० ११५
६४-	वही-	,,	पृ० १७२
६५-	वही-	,,	पृ० १८१
६६-	कहनी अनकहनी	धर्मवीर भारती	पृ० ८६
६७-	वही-	,,	पृ० ८२
६८-	वही-	,,	पृ० १०८
६६-	ठेले पर हिमालय	धर्मवीर भारती	पृ० १५
१००-	पश्यन्ती	धर्मवीर भारती	पृ० ४६

१०१- ढेले पर हिमालय धर्मवीर भारती पृ० २८
१०२- कहनी अनकहनी ,, पृ० १५०
१०३- वही- ,, पृ० १५४
१०४- वही- ,, पृ० ६७
१०५- आगन्तुक पवेरा -कहनी अनकहनी-धर्मवीर भारती पृ० १३८
१०६- रवीन्द्र जयंती का वर्ष:एक दृष्टि - धर्मवीर भारती पृ० ८८
१०७- जुग श्रद्धांजलि -कहनी अनकहनी- धर्मवीर भारती पृ० ७४
१०८- ढेले पर हिमालय धर्मवीर भारती पृ० ८२
१०९- वही- ,, पृ० ६०
११०- वही- ,, पृ० ५६
१११- पश्यन्ती ,, पृ० ५७
११२- कहनी-अनकहनी ,, पृ० १२०
११३- वही- ,, पृ० ५१
११४- ढेले पर हिमालय ,, पृ० १६८
११५- कहनी-अनकहनी ,, पृ० १२३
११६- प्रो० विजयशंकर मल्ल 'आज' जनवरी १९५६- हिन्दी निबंध
११७- माटी की मूरतें से
११८- दस तसवीरें जगदीशचन्द्र माथुर 'भूमिका से'

00000
000
0